कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 19, Issue 76
Oct.-Dec., 2022

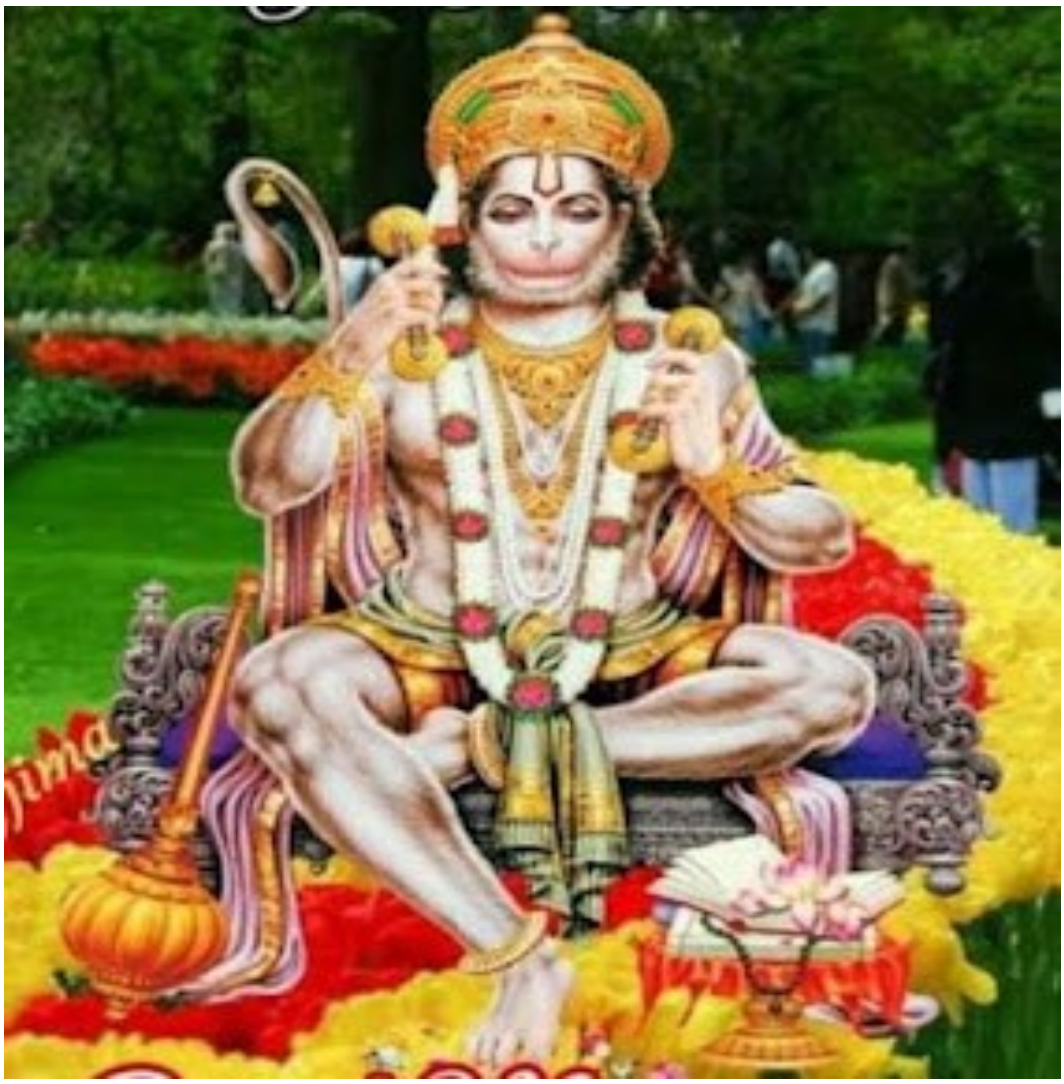

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

FOUNDER-EDITOR-PUBLISHER : Dr. SNEH THAKORE
AWARDED BY THE PRESIDENT OF INDIA

संस्थापक, सम्पादक व प्रकाशक
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत

वर्ष १९ - अंक ७६, अक्टूबर-दिसम्बर २०२२

माँझी

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

छोटी मछलियों को
बड़ी मछलियाँ निगल गई हैं
इसीलिए अब दिखाई नहीं पड़तीं वे
लेकिन आदमी छोटी-बड़ी
सभी मछलियों को निगल जाता है
सभ्य भाषा में जो 'सी-फूड' कहलाता है
नेचर सिकुड़ रही है
मुटियाते जा रहे हैं समुद्री गैंडे शार्क
ओर मोटे-मोटे मगरमच्छ
जिसमें कुछ समुद्री लुटेरे भी शामिल हो गए हैं
स्विस बैंको में भर रहे हैं लूट की कमाई
बस अब कोई कोलम्बस या वास्कोडिगामा
नहीं आता नई दुनिया की खोज में
नए मानव को तलाशने
जो भी आता है
मानव का व्यापार करने आता है
माँझी तेरी पतवार
डूबते सूरज पर हताश होने लगती है
पर विश्वास रख
तेरा सूरज अब नहीं डूबेगा कभी
एक नया गीत उतर रहा है धीरे-धीरे
माँझी रे, अब पास किनारा तेरा!

वसुधा

संस्थापक, सम्पादक व प्रकाशक : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
पाथेय	पूज्यनीय केशव बलिराम हेडगेवार	१०
घर चाहे कैसा भी हो	अटल बिहारी वाजपेयी	११
वन्दे मातरम्	बन्दना घोष	१३
अध्याय १० – विभूति योग	अविनाश कुमार	१४
सांध्य बेला	शन्नो अग्रवाल	१६
ब्रह्माण्ड अधिष्ठाता ज्योतिर्लिंग श्रीमहाकालेश्वर : श्लोक से लोक तक	डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा	१७
आज शाम ढलते-ढलते	आशीष कंधवे	२२
अद्‌भुत कथा – कान की व्यथा	आचार्य धर्म शास्त्री	२३
कहानी किस्सा रही हूँ मैं	अंकिता	२४
हिंदी के लिए खुला विश्व द्वार	डॉ. वेद प्रताप वैदिक	२५
ख़ूबसूरत ज़हाँ	डॉ. शशि ऋषि	२६
काली मुन्नी	कादम्बरी मेहरा	२७
गरीबों की बेटियाँ	डॉ. आर.के. तिवारी "मतङ्ग"	३३
हिंदी के योद्धा : प्रेमचंद का भाषा चिंतन	प्रो. अमरनाथ	३५
हाँ, माँ रफूगर ही तो है	डॉ. अलका अग्रवाल	३९
कोरोना संकट काल में वरदान हो सकती है 'आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस'	उमेश पंसारी	४०
दिवस है बीत चला	'मीनू' मीना सिन्हा	४०
गाँधी के देश में गाँधी की अनिवार्यता	डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'	४२
बाबूजी को कभी हारते नहीं देखा	देवेन्द्र श्रीवास्तव	४३
माँझी	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

E-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

भारत के अमृत महोत्सव के दौरान पड़ने वाले, प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के जन्मदिन पर, मुझे उनके लिए शुभ-कामना संदेश एवं कुछ लिखने के लिए कहा गया, जिसे मैं पुन: नत-मस्तक, ईश्वर से उनकी दीर्घायु की कामना करते हुए, वसुधा के लेखकों एवं पाठकों से साझा कर रही हूँ –

"भारत के अमृत महोत्सव के दौरान प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी के जन्मदिन पर शुभकामनाएँ"

डॉ. स्नेह ठाकुर

(संस्थापक, सम्पादक व प्रकाशक "वसुधा")

भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी को उनके जन्मदिन हेतु एक प्रवासी भारतीय की अनंत शुभ-कामनाएँ। ईश्वर करे वे दीर्घ जीवी हों और इसी प्रकार भारत का पूर्व गौरव उजागर करते हुए, उसे उसके यथोचित् स्थान पर प्रतिष्ठित करें।

आधी शताब्दी से अधिक टोरांटो, कैनेडा व अन्य क्षेत्र की निवासिनी मैं, एवं मुझ जैसे अन्य प्रवासी भारतीयों के लिए यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि माननीय नरेंद्र मोदी जी भारत की आजादी के अमृत महोत्सव पर भारत की सांस्कृतिक धरोहरों की यात्रा कर, जहाँ उनका जीर्णोद्धार कर रहे हैं, वहीं भारत की अद्वितीय संस्कृति को जो कुछ काल से काल के गर्भ में समा गई थी, उसका पूर्णोद्धार कर न केवल भारत में वरन् विश्व में भारत का गौरव गान उद्घोषित कर, उसे विश्वगुरु के पद पर पदासीन कर रहे हैं।

मैं भाग्यशालिनी हूँ कि जहाँ पूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय माननीय प्रणव मुखर्जी द्वारा मुझे "हिंदी सेवी सम्मान" मिला, वहीं माननीय प्रधानमंत्री मोदी जी के द्वारा उद्घाटित विश्व हिंदी सम्मेलन में माननीय राजनाथ सिंह द्वारा "विश्व हिंदी सम्मान" भी प्राप्त होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

हम प्रवासी भारतीय गर्व के साथ कह सकते हैं कि माननीय नरेंद्र – नरों के इन्द्र - नरेंद्र मोदी जी जब जनता के साथ हैं, तो जनता को देश के उत्थान के प्रति आश्वस्तता कैसे न होगी! विश्व में जहाँ-जहाँ भी आदरणीय मोदी जी आप गए हैं, वहाँ न केवल हम प्रवासी भारतीयों द्वारा वरन् उस देश की जनता द्वारा भी तालियों की गड़गड़ाहट में आप का भव्य स्वागत हुआ है, जो हम प्रवासी भारतीयों का सर गर्व से ऊँचा उठा देता है, और हम शान से कहते हैं कि हम प्रवासी भारतीय हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि जिस प्रकार अभी तक आपने देश सेवा में निमग्न हो, देशवासी-ग्रामवासियों को बिजली, पानी, मुहैया करवाने, युवकों को सशक्त बनाने, नारियों को गैस की सुविधा दिला धुएँ से मुक्ति दिलाने का महत्वपूर्ण काम किया है, वहीं उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कार्य नारी को शौचालय की सुविधा प्रदान कर उस पर महती अहसान किया है। कोरोना काल में जहाँ भारत ने विश्व को सहायता प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर देश को अध्यात्म की ऊँचाइयों तक पहुँचाने का आपका प्रयास वंदनीय है, जिससे कि वह अपना पूर्व गौरव प्राप्त कर सके और इसके साथ ही वर्तमान के इस तकनीकी युग में आपके दिशा निर्देश में दूसरे देशों के साथ भी भारत कदम से कदम मिलाकर चले, आपकी इसी मंगल भावना को प्रणाम करती हूँ। आपने जिसप्रकार विश्व में योग को प्रतिष्ठापित किया है वह भी अतुल्यनीय है। मेरी मनोकमाना है कि "वैदिक थॉट फॉर वर्ल्ड पीस" द्वारा योग एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को प्रशस्ति मिले। मोदी जी आपने विश्व राजनीति के क्षेत्र में भी अपना एक महत्वपूर्ण मुकाम बना लिया है जिसका सबसे महत्वपूर्ण उल्लेखनीय उदाहरण वर्तमान में रूस एवं यूक्रेन की समस्या समाधान में आपका बहुत बड़ा योगदान है, जिसकी जितनी भी सराहना की जाए वह उतनी ही कम है।

हिंदी साहित्यकार एवं वसुधा साहित्यिक पत्रिका की संस्थापक-सम्पादक एवं प्रकाशक की हैसियत से भी मैं, प्रवासी भारतीय साहित्यकार एवं "एन आर आई" योजना के आरम्भ से "एन आर आई", स्वयं अपनी ओर

से एवं अन्य प्रवासी भारतीयों की ओर से भी इस "आज़ादी का अमृत महोत्सव" पर सभी भारतीय भाई-बहनों को बधाई एवं शुभकामनाएँ दे रही हूँ। यह आज़ादी हमारी अमूल्य निधि है, जिसे हमारे पूर्वजों ने अपना बलिदान देकर हमें सौंपी है। इसकी सुरक्षा का भार, इसकी गरिमा बनाए रखना हर भारतीय एवं प्रवासी भारतीय का कर्तव्य है। भारतीयों का यह दायित्व तो बनता ही है, पर साथ ही भारत में जन्मे प्रवासी भारतीयों का भी यह दायित्व बनता है, क्योंकि भारत ने ही उन्हें इस योग्य बनाया है कि वे विदेशों में सर ऊँचा उठा गर्व से रह सकें; अत: उन्हें भी अपने भारतीय भाई-बहनों के साथ मिलकर, अपने भारत की आन-बान-शान का ध्वज ऊपर उठाकर उसका मान बढ़ाना है। साथ ही प्रवासी भारतीयों का यह भी दायित्व बनता है कि वे अपनी संतानों को, जिस भी देश के वे अब वासी हैं, उसका सम्मान करना तो सिखाएँ ही सिखाएँ, पर साथ ही उन्हें उनके पूर्वजों के इतिहास से भी परिचित करा, उसका भी सम्मान करना सिखाएँ। उन्हें अपने भूत और वर्तमान से शिक्षा ले भविष्य को मंगलमय बनाने का गुरुमंत्र दें।

भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी को हार्दिक धन्यवाद देना चाहूँगी कि उन्होंने विदेशों में भारत की जो प्रशंसनीय छवि बनाई है एवं भारत की भाषा हिंदी में अपने भाषण देकर भारतीयता का, भारतीय संस्कृति का जो मान बढ़ाया है वह अतुलनीय है, प्रशंसनीय है.

मोदी जी का व्यक्तित्व एक ऐसा असाधारण दुर्लभ व्यक्तित्व है जो सामन्यात: सबको नहीं प्राप्त होता है। "सन्यास से सत्ता के शिखर पर कैसे!" इसका राज है, उनकी गहरी सोच। इसका राज है, उनका अंतर्मन से किसी भी कार्य को करना। सन्यासी मानसिकता में कुछ वर्ष व्यतीत करने पर जब प्रबुद्ध सन्यासियों द्वारा उन्हे देश सेवा हेतु प्रेरित किया गया, तो मोदी जी उनके अमूल्य विचारों को सर-आँखों पर रख देश-सेवा में जुट गए। मोदी जी के शब्दों में – "हर शाम जब सोता हूँ, तो दूसरे दिन का सपना देखता हूँ।" भारत माँ की उन्नति हेतु मोदी जी नई चुनौतियों का सामना कर लड़ते रहे और आगे ही आगे अपना कदम बढ़ाते रहे। उनके ही शब्दों में – "जो लोग मुझ पर पत्थर फेंकते हैं मैं उन पत्थरों से पथ बना देता हूँ।" और उसी पर आगे बढ़ते रहने का संकल्प ले, आध्यात्मिक दुनिया का आशीर्वाद ले, उनकी आशीष ले कि, "देश को तुम्हारी जरूरत है जाओ और देश की सेवा करो", सन्यासी से देश-सेवक के रूप में उन्होंने स्वयं को ढाल लिया। सेवक रूप से ही चुनौतियों से लड़ते रहे और आगे बढ़ते रहे। प्रधान सेवक के रूप में सदन की सीढ़ियाँ चढ़ने के पहले, प्रथम सीढ़ी पर माथा टेकने वाले और यह कहने वाले कि, "यह देश उनकी मातृभूमि है जहाँ द्वय नहीं वहाँ द्वंद नहीं", और "जिस दिन मेरी बेसब्री खत्म हो जाएगी उस दिन मेरा व्यक्तित्व समाप्त हो जाएगा।" और इससे भी बढ़कर उनके चरित्र की दृढ़ता को दर्शाता उनका यह कथन कि "जहाँ तक रेलवे स्टेशन की बात है, वह मेरी जिंदगी का स्वर्णिम पक्ष है जिसने मुझे जीना सिखाया।" चुनौतियाँ आती रहीं और मोदी जी उस पथरीली राह पर समस्याओं का निवारण करते हुए कदम-दर-कदम आगे ही आगे बढ़ते रहे। कठोर परिश्रम ही श्री नरेंद्र मोदी जी की पूँजी है, सकल सम्पत्ति है। चुनौतियाँ आती रहीं और मोदी जी निडर हो, परिश्रम से, साहसपूर्वक उन्हें हल कर आगे बढ़ते रहे।

"सबका साथ सबका विकास" कहने वाले प्रधान मंत्री ने संघर्षों भरा जीवन जिया. ८ साल की उम्र में स्टेशन उनका दूसरा ठिकाना बन गया था जहाँ वे स्वयं तन और मन से दौड़ते रहे, पर दूसरों को गरमागरम चाय की चुस्कियों का आनंद दिलाते रहे। उनके जीवन में चुनौतियाँ आती रहीं पर वे निडर हो बिना किसी रुकावट के, बिना अपनी गति धीमी किए, उन्हें पार कर आगे ही आगे बढ़ते रहे। संघर्षों से वे टूटे नहीं, हताश नहीं हुए, वरन् धैर्यपूर्वक उनका सामना करते हुए, उनसे जूझते हुए, उन्हें परास्त कर, अपनी राह बुलंद करते रहे। "रेलवे से रॉयल पैलेस" की तुकबंदी कहने में सरल है, पर उसे यथार्थ में जीना सरल नहीं है। जिंदगी का रास्ता कठिन है। ऐसी पथरीली राह पर चल उस राह को, "जिंदगी के संघर्ष का स्वर्णिम पृष्ठ है जिसने मुझे

जीना सिखाया", बताना एक बड़े ही कमाल के ज़िगरे वाले इंसान के लिए ही सम्भव है। तभी तो दुनिया के १०० ताकतवर लोगों में मोदी जी को दुनिया के लोकप्रिय नेता बनने में समय नहीं लगा।

मेरा सर उस समय गर्व से ऊँचा उठ गया था जब अमेरिका के उस समय के राष्ट्रपति श्री ट्रम्प ने टेक्सास में मोदी जी के प्रति लोगों की भीड़ व उनके नारों को सुनकर कहा था कि "मोदी का जलवा किसी रॉकस्टार से भी बढ़कर है।"

भारत की स्वतंत्रता के ७५ वर्ष को अमृत महोत्सव में परिवर्तित करना हमारे माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की ही सोच का एक आला दर्जे का परिणाम है। एक बहुत ही सुसंस्कृत भारतीय संस्कृति, उसकी प्राचीन काल से चली आ रही सांस्कृतिक सभ्यता को दर्शाने की उनकी बलवती इच्छा का एक सुनहरा उदाहरण है।

वह भारतीय संस्कृति जो सतयुग से चली आ रही है पर जो कलयुग में कलियुगी छाया के पड़ने से – दूसरे देशों द्वारा भारत को गुलाम बना, उन्हीं देश की संस्कृतियों को यहाँ बढ़ावा देने से धूमिल पड़ गई थी, इस अमृत महोत्सव के दौरान उसने अपनी उस विदेशी विषमयी संस्कृति को अमृत से धो-पोंछकर स्वर्ण जैसी चमका दिया है। जिस प्रकार पुस्तकों में पढ़ा करते थे कि एक समय भारत सोने की चिड़िया हुआ करता था, मोदी जी के संरक्षण में हम आज आजादी के अमृत महोत्सव पर यह गर्व से दोहरा सकते हैं और अब इस संज्ञान से देश को इस दिशा में अवश्य ही अग्रसित कर सकते हैं। हम प्रयास रत हो इस दिशा में भारत के नाम को सुनहरे अक्षरों में लिखने का दिवास्वप्न देख सकते हैं; एक ऐसा दिवास्वप्न जो मेहनत से यथार्थ में परिवर्तित हो सकता है -

पंद्रह अगस्त आज़ादी का दिन हमारा
पूर्वजों ने बलिदानों से पाया
शब्दों को लड़ियों में पिरोओ, भावों का विस्तार करो
कुचक्रों का निडर हो सामना, तुम हर बार करो

भरा पड़ा है इतिहास हमारा वीर प्रतापों से
राणा प्रताप, वीर छत्रपति शिवाजी
रण-बाँकुरी झांसी की रानी लक्ष्मी बाई
पुरखों का शौर्य, बन लहू बहता था हमारी रगों में
रख लाज उनकी, प्रगति की ओर बढ़े कदम हमारे
उठा ले हम आज ये बीड़ा उठाकर ध्वज तिरंगा प्यारा
आज हैं हम जितने खड़े उनमें औरों को भी मिलाते चलें
भारत एवं भारतीय-संस्कृति की गरिमा दिखाते हुए
संस्कारी भारतीयों का घेरा बढ़ाते चलें
भारत माँ को गौरव सुमन अर्पित करते चलें
बढ़े चलें, बढ़े चलें।

नहीं है भारत केवल मानचित्र पर अंकित त्रिभुज-सा
भारत तो है निगूढ़ताओं का चिरज्ञानी, वेदों का ज्ञाता
न केवल अपने देश का, है तू शील भूमंडल का
है भारत तेरा स्वर ब्रह्मनाद उठाने वाला।

नहीं है भारत तू पर्याय मात्र स्थान का
तू है मानव की गुणविशेष परिभाषा
मानवता का दीप लिए हर मानव है तेरा
करूँ नमन मैं ऐसे श्रेष्ठ ललाट का।

भारत जैसे गौरवशाली अनमोल रत्न
नहीं है विश्व में अनेक
गर्व से मस्तक ऊँचा उठा लो
भारत का गौरव बढ़ाते चलो
बढ़े चलो बढ़े चलो।

है दम लोगों की एकता में
न समझो मामूली भीड़ इसे
समाज की रीढ़ है यह भीड़ ही
करेगी जिसे मुखर साहित्यकार की वाणी
मिलकर दोनों बनाएँगी इतिहास गौरवशाली।

एकाग्रता से जुटे रहो
भारत माँ का गौरव बढ़ाते चलो
संस्कारी-सुमन अर्पित करते चलो
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

ऐ भारत! तुझ बिन मैं मैं नहीं और तू तू नहीं
कुछ मैं तुझमें और कुछ तू मुझमें
स्वयं में पूर्ण दोनों नहीं
दोनों इकाई सिमटी समग्र में।

संघर्ष जिंदगी का सार है
सफलता की सीढ़ी है
कुछ भी नहीं काबिले-हासिल
गर चुनौतियों के चक्रव्यूह से न निकले जीवन।

हीरा बिन तराशे चमकता नहीं
पॉलिश रत्न की बिन रगड़ होती नहीं
सोना बिन अग्नि निखरता नहीं
बिन धुनें कपास रुई बनती नहीं
इंसान भी तब तलक रहता है अधूरा आदमी
जब तलक वह संघर्षों के दौर से गुजरता नहीं।

वर्षों पूर्व एक ऐसा समय भी आया था जब निराशा ने घेरा था और आत्मा चीख उठी थी जिसने मुझे "मेरा देश" शीर्षक कविता लिखने पर विवश कर दिया था –

"मेरा देश"
मेरा देश आज दो नामों में बँट गया है
भारत और इंडिया
भारत पूर्वीय दैवीय गुणाच्छादित सभ्यता का प्रतीक
और इंडिया पाश्चात्य सभ्यता का।
भारत की सात्विक संस्कृति की छाती पर
इंडिया की तामसिक वृत्ति
चढ़ कर बैठ गई है
और उसे सौतेले भाई की भाँति
चौखट से बाहर निष्कासित कर रही है।

भारतीय साहित्य, संस्कृति दम तोड़ रही है
और पश्चिमी सभ्यता जोरों से पनप रही है।

लोक गीत, नृत्य, कला
अपने ही घर में सर झुका
लज्जित-से कोने में खड़े हैं
और इंडिया के पाँव
पाश्चात्य धुन पर थिरक रहे हैं।

भारतीय इंडियन बन
अपनी मातृभाषा को परे धकेल
पराई भाषा में
उधार मिली संस्कृति में
सुखानुभूति अनुभव करता है
यह कैसी विडम्बना है?

जो देश था हर गौरव से भरपूर
वही उन सब को तुच्छ मान
नकली हीरों की चमक से प्रभावित
गलत सिद्धांतों की बैसाखियाँ लगाकर
भौतिकता की अंधाधुंध दौड़ में शामिल
बदहवास भागता जा रहा है।

काश! भारत स्वयं के नाम से ही जाना जाता
उसका अँग्रेजी अपभ्रंश रूपांतरण न होता
भारत भारत ही रहता, इंडिया न बनता।

काश! आज भी भारत जाग जाए
अपना मूल्य पहचाने
संकट के कगार पर खड़ा भारत
अतीत के असंख्य अनमोल रत्नों की
धूल झाड़ पोंछकर
उन्हें चमका-चमका कर
अपने बूते पर
विश्व में अपना तिरंगा फहराए।

साहित्य और कला करते हैं प्रस्तुत
न केवल वास्तविकता
चढ़ कल्पना के अश्व पर
धुँधलके के पार जा
अदृश्य को यथार्थ में बदलने की
है क्षमता इनकी।

जागो दूर देशीय जागो
भारत माँ का आह्वान सुनो
नहीं लो बहाने-मात्र का सहारा
कि अब तो हैं हमारी माता कनाडा
जब तुम अपनी सगी माँ के ही न बन सके
तो क्या बनोगे विमाता का सहारा!
जाओ दूर देशी जागो।

अपने प्रिय भारत के लिए
सभी सहृदय भारतीय, प्रवासी-भारतीयों से
अनुरोध है कि वे सद्भावना से ओत-प्रोत

नरों के इंद्र, नरेंद्र मोदी जी के आह्वान की डोर पकड़
वसुधा पर भारत का वर्चस्व बढ़ाने का संकल्प लें।

बँधे कर्तव्य से
सर ऊँचा उठा गर्व से
सुखद भविष्य का निर्माण करें
भारत का सम्मान करें।

हम करे भारतीय-संस्कृति का स्वागत
हम करे भारतीय-संस्कारों का आराधन
आज हैं हम जितने यहाँ
उनमें औरों को भी मिलाते चलो
संस्कारी भारतीयों का घेरा बढ़ाते चलो
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

भारत है महान्
सभ्यता, संस्कृति की पहचान
देववाणी से जुड़ी
गुणों की खान
भारत महान।

भारत भरपूर संस्कारों का स्वामी
गहन अर्थ सम्पदा धारी
जन-जन का कंठहार
भारत महान्।

साहित्य समृद्ध सरिता इसकी
विश्व में अविरल बहती
आनंदित करता मधुर निनाद
भारत महान्।

अब गर्व से फूले ना समा मैं आशावादी हूँ, क्योंकि अब आशा की किरणें झरोखों से झाँख आश्वस्त कर रही हैं कि हमारे प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी के संरक्षण में यह देश पुनः अपने वास्तविक स्थान पर विराजमान होगा। समय का जो अंतराल देश के प्रति निराशा के गर्त में डुबो रहा था, अब अपने प्रधान मंत्री जी द्वारा, केवल सपने सँजोने में ही नही वरन् उनके द्वारा आयोजित अमृत महोत्सव द्वारा भी, आपकी बाँह पकड़ कर उस गर्त से आपको निकाल, हमारे मुखों को ऊर्ध्वमुखी कर ऐसे आकाशदीप दिखा रहा है जो भविष्य के

सपने सँजोने में, खुले नयनों से भविष्य के सुनहरे सपने सँजोने में और न केवल सपने सँजोने में वरन् उस दिशा में स्वयं को प्रवृत्त करने में भी सहायक सिद्ध हो रहा है।

मोदी जी को उनके अच्छे कामों के कारण गुजरात की जनता ने लगातार चार बार २००१ से २०१४ तक गुजरात के मुख्यमंत्री पद पर आसीन किया और जब २६ मई २०१४ को मोदी जी ने पी.एम. की शपथ ली थी, १५वें प्रधानमंत्री बने थे, तब एक उम्मीद मन में चिहुँक उठी थी कि अब गुजरात के सुशासन की भाँति भारत की छवि चमक उठेगी। और हर्ष का विषय है कि दिन-प्रति-दिन मोदी जी उस ओर अग्रसित हैं।

आजादी के अमृत महोत्सव पर माननीय मोदी जी और भारत के परिपेक्ष में लिखना स्वयं में एक बहुत बड़ी बात है और ऊपर से एक प्रवासी भारतीय के लिए जिसका रोम-रोम अपने भारत की परवरिश हेतु नतमस्तक है, जिसके कारण उसे स्वदेश बने विदेश में सर ऊँचा करके रहने का शुभ अवसर मिला।

भारत के पचहत्तरवें स्वतंत्रता दिवस को सम्पूर्ण वर्ष "अमृत महोत्सव" के नामालंकरण से अलंकृत कर भविष्य के सुनहरे सपने सँजोने में, और न केवल सपने सँजोने में, वरन् उस दिशा में स्वयं को प्रवृत्त कर सपनों को साकार करने में ईश्वर हर भारतीय का सहायक सिद्ध हो, इसी मनोकामना के साथ ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मोदी जी को शत-शतायु करें जिससे वे प्रिय भारत को उसका स्वर्णिम युग प्रदान करने में सहायक सिद्ध हों।

जय भारत, जय भारती, वंदे मातरम।

पाथेय

पूज्यनीय केशव बलिराम हेडगेवार

सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय हम कुशलतापूर्वक अपने जीवन में प्रकट करें। इसी में मनुष्यत्व है, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। यदि हम व्यक्तिगत् स्वार्थभावना को तिलांजलि दें, तो सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय आप ही आप हो जाएगा। हमारा स्वार्थ ही हर काम, हमारे कर्तव्य पथ पर, आपत्तियों के पहाड़ खड़े करता है। अत: हमारे संघ बन्धुओं को चाहिये कि प्रथम वे स्वार्थ की क्षुद्र-मर्यादा को पार करें। धरोहर चोरों के हाथ न लगने पावे। हम सावधानी के साथ इनकी रक्षा करते रहें।

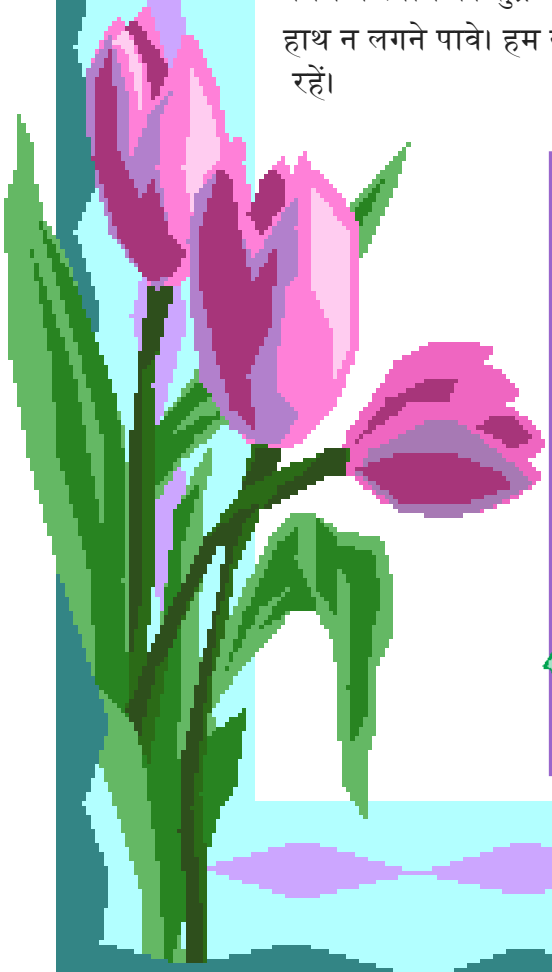

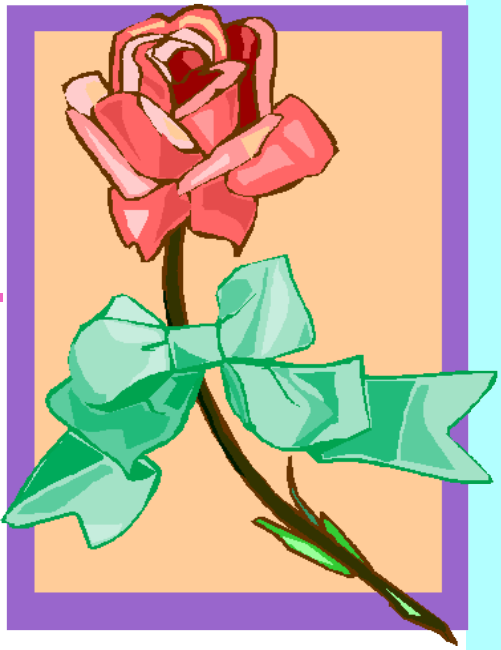

घर चाहे कैसा भी हो

अटल बिहारी वाजपेयी
(भूतपूर्व प्रधानमंत्री भारत)

घर चाहे कैसा भी हो
उसके एक कोने में
खुलकर हँसने की जगह रखना।

सूरज कितना भी दूर हो
उसको घर आने का रास्ता देना।

कभी-कभी छत पर चढ़कर
तारे अवश्य गिनना
हो सके तो हाथ बढ़ाकर
चाँद को छूने की कोशिश करना।

अगर हो लोगों से मिलना-जुलना
तो घर के पास पड़ोस जरूर रखना।

भीगने देना बारिश में
उछल-कूद भी करने देना
हो सके तो बच्चों को

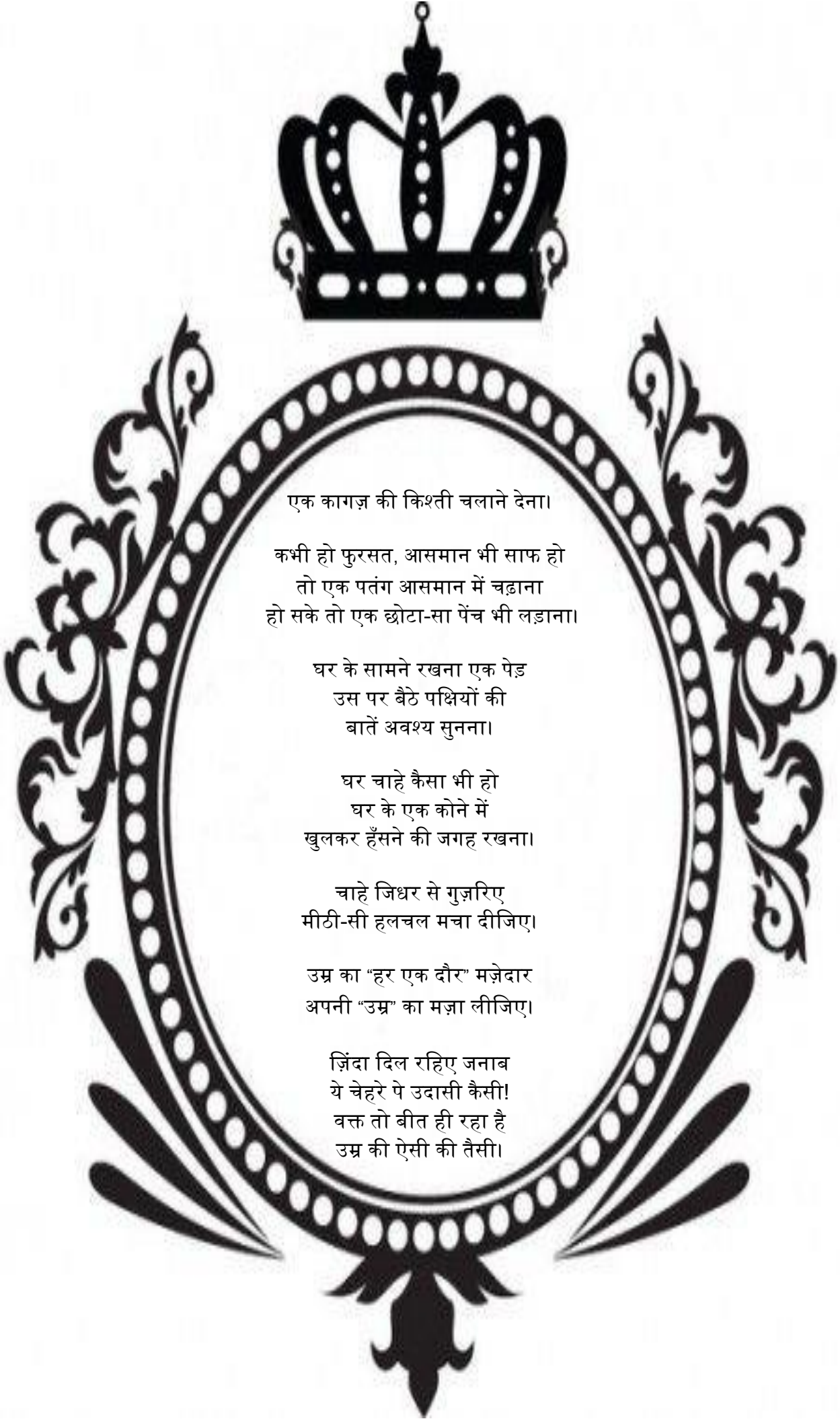

एक कागज़ की किश्ती चलाने देना।

कभी हो फुरसत, आसमान भी साफ हो
तो एक पतंग आसमान में चढ़ाना
हो सके तो एक छोटा-सा पेंच भी लड़ाना।

घर के सामने रखना एक पेड़
उस पर बैठे पक्षियों की
बातें अवश्य सुनना।

घर चाहे कैसा भी हो
घर के एक कोने में
खुलकर हँसने की जगह रखना।

चाहे जिधर से गुज़रिए
मीठी-सी हलचल मचा दीजिए।

उम्र का "हर एक दौर" मज़ेदार
अपनी "उम्र" का मज़ा लीजिए।

ज़िंदा दिल रहिए जनाब
ये चेहरे पे उदासी कैसी!
वक्त तो बीत ही रहा है
उम्र की ऐसी की तैसी।

वंदे मातरम्

बन्दना घोष

आज़ादी का मूल मंत्र यह,
दो शब्दों का वंदे मातरम्।

इतिहासों की प्रतिध्वनियों में,
अनुप्राणित यह वंदे मातरम्।

संस्कृत नहीं, सम्पूर्ण संस्कृति,
वेद ऋचा-सा वंदे मातरम् ।

बंकिम की लेखनी से निकली,
स्वर लिपि यदुनाथ वंदे मातरम्।

रवीन्द्र नाथ के कंठ मुखर ने,
गाया प्रथम यह वंदे मातरम्।

"बिस्मिल" पुस्तक "काव्य गीतांजलि",
प्रथम गीत था वंदे मातरम्।

"आनंद मठ" के संन्यासियों का,
जन आंदोलन वंदे मातरम्।

काल खंड के हुतात्माओं की,
अभिव्यक्ति थी वंदे मातरम्।

शब्द, छंद, रंग और गंध की,
सौम्य छवि है वंदे मातरम्।

"मलयज शीतल", शस्य श्यामला,"
"शुभ्र ज्योत्स्ना" वंदे मातरम्।

राष्ट्र गीत यह, देश प्रीति यह,
शंखनाद-सा वंदे मातरम्।

"सत्यमेव जयते"-सा सनातन,
जय भारत और वंदे मातरम्

अध्याय १० – विभूति योग

अविनाश कुमार

इस अध्याय में परमेश्वर अपनी विविध विभूतियों का परिचय देते हैं। ईश्वर की ८२ विभूतियाँ हैं, और वे एक-एक करके अपनी इन विभूतियों का परिचय देते हैं। हरि कहते हैं कि जग मे जो भी सुंदर, असुंदर, बलवान, निर्बल, सूखा या गीला देखो, उन सब मे वे विराजमान हैं।

कृष्ण - तू है मुझको प्यारा, तेरा हित है मुझको ध्यान,
हे अर्जुन, अतः तू मेरा, गूढ रहस्य ले जान (०१)
मुझसे बुद्धि, ज्ञान, मोह, मैं दया छमा का रूप
सुख, दुःख, जन्म, प्रलय है मुझसे, जीव अजीव स्वरूप (०४)
सप्त ऋषि, मनु चौदह, ये सब, मुझ से ही तो आये
विश्व जगत् की समस्त प्रजा, मुझ में ही अंत समाये (०६)

अर्जुन बोले - सत्य वचन है, हे केशव साक्षात्
किन्तु आपके दिव्य रूप से, देव अदेव अज्ञात (१४)
आपके इस विश्व रूप को, कैसे पाऊँ जान,
कैसे मैं चिंतन करूँ, धरूँ कैसे आपका ध्यान (१७)

यह मनुष्य की दुर्बलता ही है कि वह ईश्वर के उस रूप को जानना चाहता है, जिसमें वह उसे पहचान सके, और उसकी भक्ति करके, मोक्ष प्राप्त कर सके। जबकि ईश्वर तो प्रत्येक जीव, अजीव, जड़, चेतन मे व्याप्त है।

प्रभु बोले, अपनी माया का, संक्षेप करूँ मैं बखान
मेरी विभूतियों का अंत न आदि, पाया कोई जान (१९)
मैं ही सब का अंत हूँ, प्रारम्भ व मध्य उपस्थित
सब के हृदय में आत्मा, मुझसे ही तो जीवित (२०)
सामवेद मैं वेदों का, देवों का हूँ मैं इंद्र
प्राणों मे मैं चेतना, इंद्रियों का केंद्र (२२)
वायु बन के पवित्र करूँ, कभी राम-सा शस्त्र उठाऊँ
नदियों मे मगर-सा घूमूँ तो, गंगा स्वयं कभी बन जाऊँ (३१)

नारी के ८ स्वरूप

मृत्यु सा हरण, जीवन सा वरण – यही है मेरी शक्ति
कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति - मेधा, क्षमा, धृति सी प्रकृति (३४)
सामवेद की बृहितसाम, छंदों में गायत्री हूँ
मार्गशीर्ष मैं मासों में, वसंत की मैं शुभ ऋतु हूँ (३५)
छल-कपट का जुआ भी मैं, तेजस्वी का प्रकाश हूँ
विजय भी मैं, निश्चय भी मैं, सात्विक नर का भाव हूँ (३६)
कृष्ण हूँ मैं, अर्जुन भी मैं, मैं ही मुनिवर व्यास हूँ
कविराज मैं कवियों का, शुक्र का आभास हूँ (३७)

दमन-कर्ता का दण्ड कभी, विजयेच्छा की नीति हूँ
गोपनीय का मौन हूँ मैं, ज्ञानी की विभूति हूँ (३८)
चर-अचर का बीज हूँ मैं, इस जग का कारण मूल
न प्राणी कोई जग मे जो - जीवित हो मुझको भूल (३९)
अर्जुन, मेरी दिव्य विभूति – न अंत है न आकार
यह तो वर्णन मात्र सरल है, मेरी लीला अपरम्पार (४०)
जग मे जो भी सुंदर देखो, बल युक्त या शोभावान
उस सबको मेरी छवि ही समझो, सब में मैं विराजमान. (४१)
मेरी सम्पूर्ण ख्याति को जानो, ऐसा क्या है कारण,
जब मेरे इक अंश मात्र में, हो सर्व ब्रह्म का वर्णन! (४२)

अतः जीवन के इस विशाल स्वरूप में, हर स्वरूप ईश्वर का है। सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही विभूतियाँ ईश्वर का प्रमाण हैं, और केवल ज्ञान द्वारा ही आसक्तिहीन होकर निर्मल विचारों को प्राप्त और दुष्कर्मो से दूर रहा जा सकता है। दुष्कर्मो से दूर रहने में भी, उनके प्रति दुर्विचार होना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि, दुर्विचार भी ईश्वर की अनेकों विभूतियों में से एक है।

सांध्य बेला

शन्नो अग्रवाल

रंग बिखरा साँवला गोधूलि बेला में
खामोश-सी दिशाएँ हो रहीं अनमनी
पंखुड़ियाँ फूलों की बिखरीं टूटकर
झकझोर रही पेड़ों को पवन सनसनी।

न हो रही हलचल तरु-तड़ाग में
आँखों को मूँदकर सो गई कुमुदिनी
शाम का आँचल फिसला है धरा पर
अब रात की भी पलकें हो रही हैं घनी।

नभ पर मुस्कुरा रहा चाँद मंद-मंद
है शाखों में उलझी-उलझी-सी चाँदनी
धरती पर फैलाये अपना स्याह आँचल
भीग रही तुहिन कणों में यामिनी।

ब्रह्माण्ड अधिष्ठाता ज्योतिर्लिंग श्रीमहाकालेश्वर : श्लोक से लोक तक

डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा
(आचार्य एवं कुलानुशासक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन)

अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वंदे महाकालमहासुरेशम्॥

सुपूज्य और दिव्य द्वादश ज्योतिर्लिंगों में परिगणित उज्जयिनी के महाकालेश्वर की महिमा अनुपम है। सज्जनों को मुक्ति प्रदान करने के लिए ही उन्होंने अवंतिका में अवतार धारण किया है। ऐसे महाकाल महादेव की उपासना न जाने किस सुदूर अतीत से अकालमृत्यु से बचने और मंगलमय जीवन के लिए की जा रही है। शिव काल से परे हैं, वे साक्षात् कालस्वरूप हैं। उन्होंने स्वेच्छा से पुरुषरूप धारण किया है, वे त्रिगुणस्वरूप और प्रकृति रूप हैं। समस्त योगीजन समाधि अवस्था में अपने हृदयकमल के कोश में उनके ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन करते हैं। ऐसे परमात्मारूप महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग से ही अनादि उज्जयिनी को पूरे ब्रह्माण्ड में विलक्षण महिमा मिली है। पुरातन मान्यता के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में तीन लिंगों को सर्वोपरि स्थान मिला है – आकाश में तारकलिंग, पाताल में हाटकेश्वर और इस धरा पर महाकालेश्वर।

आकाशे तारकं लिंगं पाताले हाटकेश्वरम्।
भूलोके च महाकालोः लिंगत्रय नमोस्तुते॥

शिव की उपासना अनेक सहस्राब्दियों से चली आ रही है और शिवलिंग के रूप में उनका अर्चन सम्भवतः सबसे प्राचीन प्रतीकार्चन है। वैदिक वाङ्मय के रुद्र ही परवर्ती काल में शिव के रूप में लोक में बहुपूजित हुए, जो अघोर और फिर घोर से भी घोरतर रूप लिए थे। उज्जयिनी अति प्राचीनकाल से जुड़े दर्शन, पूजा पद्धति और कला परम्पराओं के विकास में इस क्षेत्र का विशिष्ट योगदान रहा है। शैव धर्म की चार धाराओं - शैव, कालानल, पाशुपत और कापालिक का सम्बंध न्यूनाधिक रूप से उज्जैन, ओंकारेश्वर, मंदसौर सहित समूचे मालवांचल से रहा है। पुराणों से संकेत मिलता है कि उज्जयिनी पाशुपतों की पीठ स्थली रही है। शंकर दिग्विजय के अनुसार यहाँ कापालिक निवास करते थे। महाकालेश्वर यहाँ के अधिष्ठाता देवता है। इनका ज्योतिर्लिंग दक्षिणामूर्ति होने से तांत्रिक साधना की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उज्जैन के महाकाल वन का तांत्रिक परम्परा में विशिष्ट स्थान है। स्कंदपुराण के अवंती खंड के अनुसार साधना की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी पाँच स्थल - श्मशान, ऊषर, क्षेत्र, पीठ और वन यहीं उपलब्ध हैं -

श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठं तु वनमेव च।
पंचैकत्र न लभ्यंते महाकालवनाद् ऋते॥

प्राचीन मान्यता के अनुसार उज्जयिनी यदि नाभिदेश है तो भूलोक के प्रधान पूज्यदेव महाकाल हैं। सृष्टि का प्रारम्भ उन्हीं से हुआ है - कालचक्रप्रवर्तको महाकालः प्रतापनः। वस्तुतः भगवान् महाकाल की प्रतिष्ठा और महिमा से जुड़े अनेक पौराणिक आख्यान मिलते हैं, जिनसे अवंती क्षेत्र में शैव धर्म की प्राचीनता के संकेत मिलते हैं। शिवपुराण के अनुसार सतयुग और त्रेतायुग के संधिकाल के प्रथम चरण में हिरण्याक्ष की विजययात्रा के दौरान उसके सेनापति दूषण ने अवंती पर आक्रमण किया था। उस समय उज्जयिनी में राजा चंद्रसेन का राज्य था। पुरोहितों ने इस संकट के निवारण के लिए भगवान् शिव की पूजा की सलाह दी, तब राजा ने स्वयं शिवजी का चमत्कार एक ग्वाले की शिवभक्ति में प्रत्यक्ष देखा। ग्वाला जहाँ शिव की पूजा किया करता था, वहीं वैदिक अनुष्ठानपूर्वक शिव मंदिर की स्थापना करवाई गई। सम्भवतः वही भगवान महाकालेश्वर के देवालय की

स्थापना का प्रथम दिन था। विभिन्न युगों की गणना के आधार पर यह समय आज से करीब ग्यारह हजार नौ सौ वर्ष पहले अनुमानित है। त्रेता युग में सम्राट भरत के मित्र चित्ररथ अवंती क्षेत्र के राजा थे। भरत की चौथी पीढी के राजा रन्तिदेव ने इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया था। त्रेतायुग में अयोध्या में राजा हरिश्चंद्र हुए थे, उनसे कुछ ही समय बाद महेश्वर (माहिष्मती) में हैहयवंश में कार्तवीर्य अर्जुन जैसे प्रतापी सम्राट हुए, जो सहस्रबाहु के नाम से प्रख्यात हैं। उन्हीं के सौ पुत्रों में से एक आवंत या अवंती थे, जिनके नाम पर यह क्षेत्र अवंती कहलाया। त्रेतायुग में राम के पुत्र कुश स्वयं महाकालेश्वर के दर्शन के लिए अवंतिका में आए थे।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार स्वयं भगवान राम और श्रीकृष्ण ने महाकालेश्वर का पूजन किया था। महाकालेश्वर की प्राचीनता को लेकर अनेक पौराणिक, साहित्यिक और अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध हैं, जो शैव साधना की दृष्टि से इस स्थान की महिमाशाली स्थिति को रेखांकित करते हैं। महाकाल स्वयं प्रलय के देवता हैं, इसीलिए उज्जयिनी सभी कल्पों तथा युगों में अस्तित्वमान रहने से 'प्रतिकल्पा' संज्ञा को चरितार्थ करती है। पुराणों का संकेत साफ है - 'प्रलयो न बाधते तत्र महाकालपुरी।' मृत्युलोक के स्वामी महाकाल इस नगरी के तब से ही अधिष्ठाता हैं, जब सृष्टि का समारम्भ हुआ था। उपनिषदों एवं आरण्यक ग्रंथों से लेकर वराहपुराण तक आते-आते इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि महाकाल तो स्वयं भारतभूमि के नाभिदेश में स्थित हैं - 'नाभिदेशे महाकालस्तन्नाम्ना तत्र वै हरः... इत्येषा तैत्तिरीश्रुतिः।' महाकाल का उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण, अग्नि पुराण, शिव पुराण, गरुड़ पुराण, भागवत पुराण, लिंग पुराण, वामन पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण, सौर पुराण सहित अनेकानेक पुराण एवं प्राचीन ग्रंथों में सहज ही उपलब्ध है। भागवत में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण, बलराम और मित्र सुदामा ने गुरु सांदीपनि के आश्रम में विद्याध्ययन पूर्ण कर स्वघर लौटने के पूर्व गुरुवर के साथ जाकर महाकाल की भक्ति भावनापूर्वक पूजा की थी। उन्होंने एक सहस्र कमल शिव जी के सहस्रनाम के साथ अर्पित किए थे।

पुराणकाल में तो महाकालेश्वर की विशिष्ट महिमा थी ही, पुराणोत्तर दौर में प्रद्योत युग, मौर्य युग, शुंग, शक, विक्रमादित्य, सातवाहन, गुप्त, हर्षवर्धन, प्रतिहार, परमार, मुगल, मराठा आदि सभी युगों में वे बहुलोकपूजित रहे हैं। विभिन्न युगों में उज्जैन में विकसित कला परम्पराएँ भी शैव धर्म के विविधायामी रूपांतर का साक्ष्य देती आ रही हैं।

सम्राट विक्रमादित्य की रत्नसभा के अनूठे रत्न महाकवि कालिदास (प्रथम शती ई. पू.) ने अपनी प्रिय नगरी उज्जयिनी और महाकालेश्वर मंदिर का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है। उनके समय में यह पुण्य नगरी अपार वैभव और सौंदर्य से मंडित थी। इसीलिए वे इसे स्वर्ग के कांतिमान खण्ड के रूप में वर्णित करते हैं - 'दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्'। कालिदास के पूर्व भी यह नगरी अवन्ती या मालव क्षेत्र की प्रमुख नगरी थी ही, इसे राजधानी होने का भी गौरव मिला हुआ था। यहाँ सम्राट का राजप्रसाद भी था, कालिदास ने जिसके महाकाल मंदिर से अधिक दूर न होने का संकेत किया है - 'असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।' उज्जयिनी के राजभवन और हवेलियाँ भी दर्शनीय थे, जिनके आकर्षण में मेघदूत को बाँधने की कोशिश स्वयं कालिदास ने की है।

कालिदास के समय उज्जयिनी शैव मत का प्रमुख केन्द्र थी। महाकवि के समय से शताब्दियों पूर्व से ही इस नगरी में शैव साधना एवं शैव स्थलों की प्रतिष्ठा रही थी। इसके अनेक पौराणिक साहित्यिक, पुरातात्त्विक एवं मुद्रा शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं। महाकवि कालिदास ने भी शैव मत की प्रतिष्ठा की दृष्टि से उज्जयिनी की महिमा को विशेष तौर पर रेखांकित किया है। उनके काल में उज्जयिनी की पहचान महाकाल मंदिर और क्षिप्रा से जुड़ी हुई थी। लोकमानस में महाकाल की प्रतिष्ठा तीनों लोकों के स्वामी और चण्डी के पति के रूप में थी। उनका मंदिर घने वृक्षों से भरे-पूरे महाकाल वन के मध्य में था। वनवृक्षों की शाखाएँ बहुत ऊपर तक फैली हुई

थीं। मंदिर का परिसर सुविस्तृत था, जिसके आँगन में सायंकाल को महाकाल के अर्चन एवं संध्या आरती के बाद नृत्यांगनाओं का नर्तन होता था। उन नर्तकियों के पैरों की चाल के साथ-साथ मेखलाएँ झनझनाती रहती थीं। उनके हाथों में रत्न जटित हत्थियों वाले चँवर रहते थे। नर्तन-पूजन के पश्चात् वे मंदिर से बाहर निकलती थीं। मंदिर के अन्दर शिव-कथा पर आधारित प्रस्तर-शिल्प भी थे। महाकाल मंदिर में साँझ की पूजा विशेष महिमाशाली मानी जाती थी। उस समय नगाड़ों के गर्जन के साथ महाकालेश्वर की सुहावनी आरती होती थी। उधर महाकाल वन के वृक्षों पर साँझ की लालिमा छा जाती थी, जो श्रद्धालुओं को मोहित कर देती थी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इस प्रसंग को रेखांकित किया है -

महाकाल मंदिरेर माझे
तखन गंभीरमन्द्रे संध्यारति बाजे।

महाकाल की पूजा पद्धति का संकेत भी कालिदास साहित्य में प्राप्त होता है। रघुवंश तथा मेघदूत से ज्ञात होता है कि महाकाल के सुप्रसिद्ध मंदिर में पशुपति शिव की प्रतिमा रही। सन्ध्या के समय उस पर धूप आ जाने से ऐसा लगता है, मानो उसने गजचर्म पहन लिया हो। इससे स्पष्ट है कि मंदिर में महाकाल की प्रतिमा इस प्रकार प्रतिष्ठित थी कि उस पर संध्या का प्रकाश पड़ता था। या तो वह प्रतिमा बिना छत के देवायतन में प्रतिष्ठित थी अथवा पूर्व-पश्चिम में गर्भगृह ऐसा खुला था कि भीतर की प्रतिमा पर पूरी धूप आती रहती थी। मेघदूत का एक श्लोक तो स्पष्ट संकेत करता है कि महाकाल मंदिर में नृत्य करते शिवजी की अनेक भुजाओं वाली प्रमुख प्रतिमा थी जिसे भवानी भक्तिपूर्वक निहार रही हैं।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छवां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या॥

कालिदास नीललोहित से मुक्ति की कामना भी करते हैं। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड (अध्याय-२) में नीललोहित का स्वरूप दिया गया है। तदनुसार उसमें पाँच मुख, दस भुजा, पन्द्रह आँखें, साँप की यज्ञोपवीत, जटा, चन्द्र और सिंहचर्म का वस्त्र बताया गया है। यह रूप महाकाल पशुपति का नहीं है। नटराज शिव की उज्जैन से प्राप्त आठवीं शती की एक खण्डित प्रतिमा ग्वालियर में सुरक्षित है। किन्तु कालिदास से यह प्रतिमा सदियों बाद बनी। कालिदास के युग में महाकाल की प्रतिमा रही, यह बृहत्कथा के संस्करणों से भी पुष्ट होता है। उसमें एक व्यक्ति महाकाल प्रतिमा के घुटनों पर सिर टिकाकर रोता है। उसमें महाकाल के हाथों की भी चर्चा है। मेघदूत में शिवलिंग का संकेत तो नहीं मिलता है, किन्तु ज्योतिर्लिंग अवश्य रहा होगा। पौराणिक परम्परा इस बात की बार-बार पुष्टि करती है।

गुप्त और हर्षवर्धन युग (३३५-८४८ ई.) में भी उज्जयिनी शैव मत का एक प्रमुख केन्द्र रही। महाकवि वाण ने अपनी कादम्बरी में उल्लेख किया है कि यहाँ महाकाल स्वरूप में शिव की आराधना की जाती है। यहाँ शंकर के अनेक मंदिर थे तथा प्रमुख चौराहों पर भी शिवलिंग स्थापित थे। यहाँ पर आधिपत्य रखने वाले यशोवर्धन, हर्षवर्धन जैसे अनेक शासक शिव के उपासक थे। हर्षवर्धन किसी भी सैनिक अभियान के पूर्व नील-लोहित शिव की पूजा किया करता था। यहाँ शिव के साथ शक्ति की पूजा का भी समन्वय रहा है। गुप्त युग में महाकाल मंदिर अत्यंत प्रशस्त और भव्य था। इसके अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं के अनेक मंदिर थे। मंदिरों पर स्वर्ण-कलश और श्वेत पताकाएँ सुशोभित होती थीं। उनकी भित्तियों पर देव, दानव, सिद्ध, गंधर्व आदि के चित्र बने थे। यहाँ शिव की कामदेव के रूप में भी पूजा की जाती थी।

महाकाल वन जहाँ देश-दुनिया के श्रद्धालुओं को आकर्षित करता रहा है, वहीं एक दौर में यहाँ आक्रांताओं ने हमले भी किए। एक मान्यता के अनुसार १२३५ ई. के आसपास आततायी शासकों ने मालवा पर हमले के

दौरान उज्जैन को भी लूटा था। महाकाल मंदिर में भी लूट-खसोट की गई थी, जिसका उल्लेख अँग्रेज इतिहासकारों ने किया है। परवर्ती काल में यह मंदिर हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना का केन्द्र भी बना। अनेक मुस्लिम शासकों ने महाकाल सहित उज्जैन के विभिन्न मंदिरों में पूजा-प्रबंध के लिए सरकारी सहायता उपलब्ध करवाई। शाहजहाँ, औरंगजेब आदि सहित एक दर्जन मुस्लिम शासकों की ऐसी सनदें मिली हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने शाही खजाने से महाकालेश्वर एवं अन्य मंदिरों में पूजा आदि के लिए मदद की थी। देश के प्रमुख मंदिरों में नंदादीप (निरंतर प्रदीप्त रहने वाला दीपक) लगाने की प्रथा रही है। उसका निर्वाह महाकाल मंदिर में आज भी हो रहा है। इस परम्परा के निमित्त १०६१ हिजरी में सम्राट आलमगीर ने चार सेर घी रोजाना जलाने के लिए एक सनद के माध्यम से राशि स्वीकृत की थी, जो धार्मिक सहिष्णुता का नायाब उदाहरण है।

मराठाकाल में राणोजी शिंदे के दीवान रामचंद्र बाबा सुखटनकर (या शेणवी) ने उज्जयिनी में धार्मिक पुनर्जागरण किया। उन्होंने १७३० के आसपास महाकाल के वर्तमान मंदिर, रामघाट, पिशाचमुक्तेश्वर घाट आदि का निर्माण करवाया था। इसी प्रकार पुराणोक्त चौरासी महादेव तथा अनेक शाक्त तथा शैव स्थलों के जीर्णोद्धार या नवीन प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य भी मराठाकाल में सम्भव हुआ। सिंधिया राज्य के संस्थापक महादजी ने महाकाल मंदिर और उसके पुजारी वर्ग का आस्थापूर्वक पोषण किया। भोज, ग्वालियर, होल्कर राज्य के राजवंशियों की ओर से महाकालेश्वर के पूजन आदि के लिए निरंतर सहायता प्राप्त होती रही थी।

वर्तमान महाकालेश्वर मंदिर एवं परिसर सुविस्तृत, विशाल और अलग-अलग युगों की कला सम्पदा को सहेजे हुए है। महाकाल के दक्षिण मूर्ति शिवलिंग की विस्तीर्ण रजत निर्मित जलाधारी अत्यंत कलामय और नागवेष्टित निर्मित हुई है। शिवजी के सम्मुख नंदी की पाषाणमूर्ति धातुपत्रवेष्टित विशाल प्रतिमा है। गर्भगृह में पश्चिम की ओर गणेश जी, उत्तर की ओर भगवती पार्वती और पूर्व में कार्तिकेय की प्रतिमा स्थापित है। मंदिर में निरंतर दो नंदादीप तेल एवं घी के प्रज्वलित रहते हैं। मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश के लिए पुरातन गलियारे के साथ ही अब विशाल सभागारयुक्त गलियारे बन गए हैं, जहाँ एक साथ सैकड़ों लोग दर्शन-आरती का आनंद ले सकते हैं महाकालेश्वर के ठीक ऊपरी भाग में ओंकारेश्वर की प्रतिमा है तथा सबसे ऊपरी तल पर नागचन्द्रेश्वर की। नागचंद्रेश्वर के दर्शन वर्ष में एक बार नागपंचमी के दिन ही होते हैं।

महाकालेश्वर परिसर में वृद्धकालेश्वर (जूना महाकाल), राम-जानकी, अवंतिका देवी, अनादिकल्पेश्वर, साक्षी गोपाल, स्वप्नेश्वर महादेव, सिद्धि विनायक, हनुमान, लक्ष्मी-नृसिंह आदि सहित अनेक लघु मंदिर भी हैं। मंदिर परिसर में विशाल कोटितीर्थ कुंड भी है, पुराणों में जिसकी बड़ी महिमा वर्णित है। कुंड के चहुँ ओर अनेक शिव मंदरियाँ हैं, जो इस स्थान के कला वैभव को बहुगुणित करती आ रही हैं। महाकाल मंदिर तथा आसपास के अन्य मंदिरों में परमारकालीन शिलालेख लगे हुए है जिनमें राजाभोज, उदयादित्य, नरवर्मन, निर्वाणनारायण, विज्जसिंह आदि राजाओं के भग्न शिलालेख प्राप्त हुए है। एक शिलालेख गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह का भी है, जिसने उज्जयिनी पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जिसकी स्मृति में यह अभिलेख मंदिर में लगवाया होगा। परमारकाल की अनेक कलात्मक प्रतिमाएँ मंदिर क्षेत्र में स्थान-स्थान पर लगी हुई हैं, जिनमें शेषशायी विष्णु, गरुडासीन विष्णु, उमा-महेश, कल्याण सुंदर, शिव-पार्वती, नवग्रह, अष्टदिक्पाल, पंचाग्नि तप करती पार्वती, गंगा-यमुना आदि की प्रतिमाएँ प्रमुख हैं। पूर्व में यहाँ परमार राजाओं की प्रतिमाएँ भी लगी हुई थीं जिनमें से एक वर्तमान में विक्रम कीर्ति मंदिर स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित है।

महाकाल मंदिर में त्रिकाल पूजा होती है। प्रातःकाल सूर्योदय से पहले शिव पर चिताभस्म का लेपन किया जाता है। यह पूजा महिम्नस्तोत्र के 'चिताभस्मालेपः' श्लोक के अनुरूप होती है। इस पूजा हेतु किसी विशिष्ट चिताभस्म की निरंतर प्रज्वलित रहने वाली अग्नि से योजना की जाती है। तत्पश्चात् क्रमशः प्रातः आठ बजे, मध्याह्न में और सायंकाल के समय महाकाल की पूजा, श्रृंगार आदि किया जाता है। रात्रि में १० बजे शयन

आरती होती है। विभिन्न व्रत, पर्व और उत्सवों के समय महाकालेश्वर मंदिर का परिसर असंख्य श्रद्धालुओं की आस्था का विशेष केन्द्र बन जाता है। प्रतिवर्ष श्रावण मास के चार और भादौ मास के दो सोमवार पर निकलने वाली सवारियाँ देश-दुनिया के भक्तों और पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनती हैं। इन सवारियों का मूल भाव यही है कि महाकाल राजाधिराज हैं और वे उज्जयिनी की मुखय सड़कों पर निकलकर प्रजा का हाल-चाल जानते हैं। इसी प्रकार की सवारियाँ कार्तिक मास में निकलती हैं। दशहरा पूजन के लिए महाकाल नए उज्जैन में पहुँचते हैं। महाशिवरात्रि, हरिहर मिलाप, रक्षाबंधन, वैशाख मास, नागपंचमी जैसे अनेक पर्वोत्सव भी इस मंदिर को विशेष आभा देते हैं। बारह वर्षों में उज्जैन में आयोजित सिंहस्थ के समय लाखों श्रद्धालु महाकालेश्वर के दर्शन के लिए पहुँचते हैं।

महाकाल कालगणना के अधिष्ठाता देव भी हैं। खगोलशास्त्रीय दृष्टि से उज्जयिनी का महत्त्व सुदूर अतीत से बना हुआ है। इसी स्थान से कर्क रेखा गुजरती है, जो भू-मध्य रेखा को काटती है। इसी दृष्टि से उज्जैन को पृथ्वी और कालगणना का केन्द्र माना गया है। क्षिप्रा नदी में नृसिंह घाट के पास कर्कराजेश्वर मंदिर है। ऐसी मान्यता है कि वहीं पर कर्क रेखा, भूमध्य रेखा को काटती है। यह स्थान महाकाल मंदिर से अधिक दूर नहीं है। स्पष्ट है कि महाकाल पृथ्वी के केन्द्र बिन्दु पर स्थित हैं और वे ही कालगणना के प्रमुख यंत्र 'शंकु यंत्र' के मूल स्थान हैं।

श्लोक से लोक तक सभी की आस्था का केन्द्र हैं महाकालेश्वर। लोक और लोकोत्तर सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए भक्तगण अपनी-अपनी इच्छा उनके सम्मुख रखते हैं और उनकी पूर्ति के लिए मानवलोकेश्वर महाकाल का भंडार कभी रिक्त नहीं होता है।

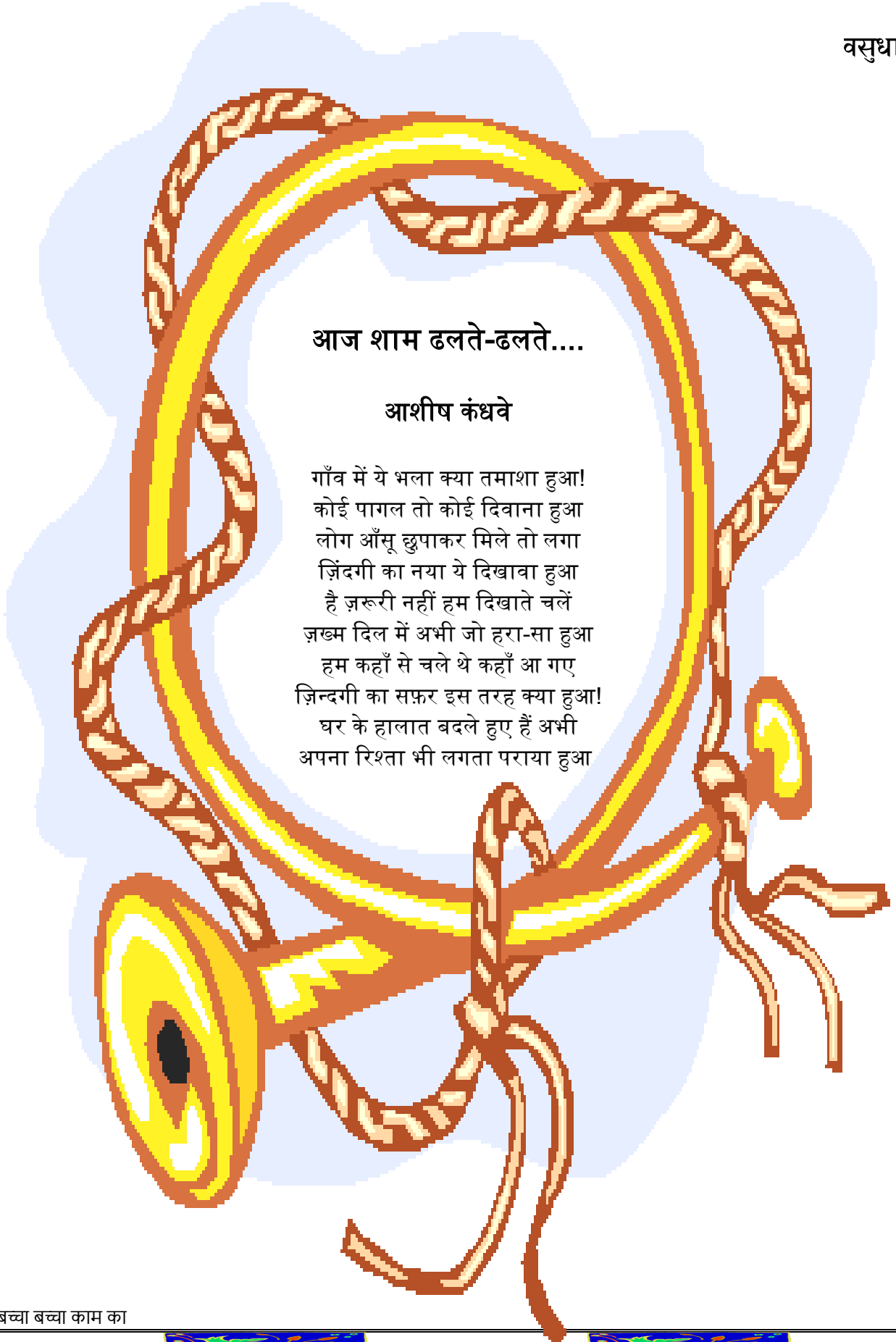

आज शाम ढलते-ढलते....

आशीष कंधवे

गाँव में ये भला क्या तमाशा हुआ!
कोई पागल तो कोई दिवाना हुआ
लोग आँसू छुपाकर मिले तो लगा
ज़िंदगी का नया ये दिखावा हुआ
है ज़रूरी नहीं हम दिखाते चलें
ज़ख्म दिल में अभी जो हरा-सा हुआ
हम कहाँ से चले थे कहाँ आ गए
ज़िन्दगी का सफ़र इस तरह क्या हुआ!
घर के हालात बदले हुए हैं अभी
अपना रिश्ता भी लगता पराया हुआ

अद्भुत कथा - कान की व्यथा

आचार्य धर्म शास्त्री

हैलो दोस्तों,

मैं हूँ कान। हम दो हैं। जुड़वाँ भाई हैं, लेकिन हमारी किस्मत ही ऐसी है कि आज तक हमने अपने दूसरे भाई को देखा तक नहीं।

पता नहीं कौन से श्राप के कारण हमें विपरीत दिशा में चिपका कर भेजा गया है। दुख सिर्फ़ इतना ही नहीं है। हमें ज़िम्मेदारी सिर्फ़ सुनने की मिली है, गालियाँ हों या तालियाँ, अच्छा हो या बुरा, सब हम ही सुनते हैं।

मगर बाद में धीरे-धीरे हमें खूँटी समझा जाने लगा। चश्मे का बोझ डाला गया, फ्रेम की डण्डी को हम पर फँसाया गया। ये दर्द सहा हमने।

क्यों भाई! चश्मे का मामला आँखो का है, तो हमें बीच में घसीटने का मतलब क्या है? बोलते नहीं तो क्या हुआ, सुनते तो हैं ना। हर जगह बोलने वाले ही क्यों आगे रहते है।

बचपन में पढ़ाई में किसी का दिमाग काम न करे तो मास्टर जी हमें ही मरोड़ते हैं। जवान हुए तो आदमी, औरतें सबने सुन्दर-सुन्दर लौंग, बालियाँ, झुमके आदि बनवाकर हम पर ही लटकाये। छेदन हमारा हुआ, तारीफ़ मुँह की!

और तो और श्रृंगार देखो, आँखों के लिए काजल, मुँह के लिए क्रीमें, होठों के लिए लिपस्टिक, हमने आज तक कुछ माँगा हो तो बताओ?

कभी किसी कवि ने, शायर ने, कोई तारीफ ही की हो तो बताओ? इनकी नजर में आँखे, होंठ, गाल, ये ही सब कुछ है। हम तो जैसे किसी मृत्यु-भोज की बची-खुची दो पूड़ियाँ हैं, जिसे उठाकर चेहरे के साइड में चिपका दिया।

और तो और, कई बार बालों के चक्कर में हम पर भी कट लगते हैं। हमें डिटॉल लगाकर पुचकार दिया जाता है।

किसको कहें? बातें बहुत सी हैं, किससे कहूँ!

दर्द बाँटने से मन हल्का हो जाता है।
आँख से कहूँ तो वे आँसू टपकाती हैं।
नाक से कहूँ तो वो नेटा बहाता है।
मुँह से कहूँ तो वो हाय-हाय करके रोता है।

और बताऊँ - पण्डित जी का जनेऊ, टेलर मास्टर की पेंसिल, मिस्त्री की बची हुई गुटखे की पुड़िया, सब हम ही सम्भालते हैं। और, आजकल ये नया-नया मास्क का झंझट भी हम ही झेल रहे हैं। कान नहीं, पक्की खूँटियाँ हैं हम। और भी कुछ टाँगना, लटकाना हो तो लाओ हम दोनों भाई तैयार हैं। लटका लो।

कहानी किस्सा रही हूँ मैं

अंकिता

अजब कहानी रूहानी किस्सा रही हूँ मैं
संग उसके महफिल में तन्हा रही हूँ मैं
बदरंग किस्मत ने बदले है हालात मेरे
वरना खूबसूरत गुलों की गुलदस्ता रही हूँ मैं!

अब रेतीली मरुस्थल की धरा रही हूँ मैं
कभी वफ़ा मुहब्बत की सुमन रही हूँ मैं
कोमल झरोखे नयन की काजल बन बहती
बिनकही सिसकियों की दास्ताँ रही हूँ मैं!

नीर मे लकीरें अस्तित्व ढूँढती रही हूँ मैं
ग़मगीन समुद्र कहलाती रही हूँ मैं
नयनों के कोर में प्रेम बसाकर रखती
उसने नाम दिया ग़मे सागर मुझे
निगाहों मे अपनी मैं मीठा-सा
फ़कत बहता दरिया रही हूँ मैं!

कटे पंख हौसलों का आसमाँ
में उड़ती रही हूँ मैं
सिलवट पर जख्मों को पीस
सीने मे दफ़न करती रही हूँ मैं
सुनो, हाँ सुनो ना
मुझे तो मुहब्बतों की शर्तों ने घायल किया
कभी बेपनाह उसकी चाहत वफ़ा रही हूँ मैं!

जज़्बात कभी पन्नों पर कभी दिल पर
उतारती रही हूँ मैं
छुपा कर आसूँ अपने मुस्कुराती ग़ज़ल रही हूँ मैं
बेरुख़ी का सिलसिला अंकिता थमने का नाम नही लेता
कभी उसकी धड़कन पनाहों की दिलवर रही हूँ मैं!

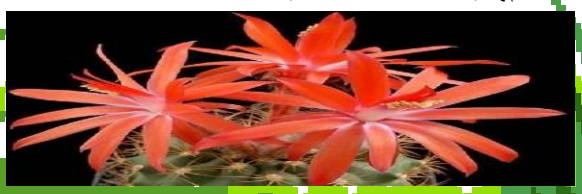

हिंदी के लिए खुला विश्व-द्वार

डॉ. वेदप्रताप वैदिक
(भारतीय भाषा सम्मेलन अध्यक्ष)

संयुक्तराष्ट्र संघ में अभी भी दुनिया की सिर्फ छह भाषाएँ आधिकारिक रूप से मान्य हैं। अँग्रेजी, फ्रांसीसी, चीनी, रूसी, हिस्पानी और अरबी! इन सभी छह भाषाओं में से एक भी भाषा ऐसी नहीं है, जो बोलनेवालों की संख्या, लिपि, व्याकरण, उच्चारण और शब्द-संख्या की दृष्टि से हिंदी का मुकाबला कर सकती हो। इस विषय की विस्तृत व्याख्या मेरी पुस्तक 'हिंदी कैसे बने विश्वभाषा?' में मैंने की है। यहाँ तो मैं इतना ही बताना चाहता हूँ कि हिंदी के साथ भारत में ही नहीं, विश्व मंचों पर भी घनघोर अन्याय हो रहा है, लेकिन हल्की-सी खुशखबर अभी-अभी आई है। संयुक्तराष्ट्र संघ की महासभा ने अपने सभी 'जरुरी कामकाज' में अब उक्त छह आधिकारिक भाषाओं के साथ हिंदी, उर्दू और बांग्ला के प्रयोग को भी स्वीकार कर लिया है। ये तीन भाषाएँ भारतीय भाषाएँ हैं, हालाँकि पाकिस्तान और बांग्लादेश को विशेष प्रसन्नता होनी चाहिए, क्योंकि बांग्ला और उर्दू उनकी राष्ट्रभाषाएँ हैं। यह खबर अच्छी है लेकिन अभी तक यह पता नहीं चला है कि संयुक्तराष्ट्र के किन-किन कामों को 'जरुरी' मानकर उनमें इन तीनों भाषाओं का प्रयोग होगा। क्या उसके सभी मंचों पर होनेवाले भाषणों, उसकी रपटों, सभी प्रस्तावों, सभी दस्तावेजों, सभी कार्रवाइयों आदि का अनुवाद इन तीनों भाषाओं में होगा? क्या इन तीनों भाषाओं में भाषण देने और दस्तावेज़ पेश करने की अनुमति होगी? ऐसा होना मुझे मुश्किल लग रहा है लेकिन धीरे-धीरे वह दिन आ ही जाएगा जबकि हिंदी संयुक्तराष्ट्र की सातवीं आधिकारिक भाषा बन जाएगी।

हिंदी के साथ मुश्किल यह है कि वह अपने घर में ही नौकरानी बनी हुई है तो उसे न्यूयार्क में महारानी कौन बनाएगा? हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं और हिंदी देश में अधमरी (अर्धमृत) पड़ी हुई है। कानून-निर्माण, उच्च शोध, विज्ञान विषयक अध्यापन और शासन-प्रशासन में अभी तक उसे उसका उचित स्थान नहीं मिला है। जब १९७५ में पहला विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में हुआ था, तब भी मैंने यह मुद्दा उठाया था और २००३ में सूरीनाम के विश्व हिंदी सम्मेलन में मैंने हिंदी को सं.रा. की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित करवाया था। १९९९ में भारतीय प्रतिनिधि के नाते संयुक्तराष्ट्र में मैंने अपने भाषण हिंदी में देने की कोशिश की लेकिन मुझे अनुमति नहीं मिली। केवल अटलजी और नरेंद्र मोदी को अनुमति मिली, क्योंकि हमारी सरकार को उसके लिए कई पापड़ बेलने पड़े थे। विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने भरसक कोशिश की कि हिंदी को संयुक्तराष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा मिले लेकिन कोई मुझे यह बताए कि हमारे कितने भारतीय नेता और अफसर वहाँ जाकर हिंदी में अपना काम-काज करते हैं? जब देश में सरकार का सारा महत्वपूर्ण काम-काज (वोट माँगने के अलावा) अँग्रेजी में होता है तो संसार में वह अपना काम-काज हिंदी में कैसे करेगी? अँग्रेजी की इस गुलामी के कारण भारत दुनिया की अन्य समृद्ध भाषाओं का भी लाभ लेने से खुद को वंचित रखता है। देखें, शायद संयुक्त राष्ट्र की यह पहल भारत को अपनी भाषायी गुलामी से मुक्त करवाने में कुछ मददगार साबित हो जाए!

ख़ूबसूरत जहाँ

डॉ. शशि ऋषि

कितना ख़ूबसूरत है ये ज़हाँ,
दोस्त-यार हैं मेहरबाँ यहाँ.

ज़न्नत की मुझे कोई तमन्ना नहीं,
है क्या! जो मुझे यहाँ मिला नहीं.

झोली ही तंग है मेरी,
देने वालों की यहाँ कमी नहीं.

मैं इंसानियत में विश्वास रखने वाला,
पैदा हुआ एक इंसान हूँ.

इंसानियत ही मेरा धर्म है,
नि:स्वार्थ सेवा ही मेरा कर्म है.

मैं जो भी हूँ, जैसा भी हूँ, मुझे वैसा ही अपनाओ,
मैं तो अपनी जीन्स और वातावरण का नतीज़ा हूँ.

कुछ पल ही तो हैं, जो अब बाकी हैं,
कम हैं, मगर बहुत क़ीमती हैं.

सोच-समझ कर इन्हें इस्तेमाल करूँगा,
जन-सेवा, दोस्तों की ख़िदमत में गुज़ार दूँगा.

खुदा अच्छी सेहत बक्शे,
दोस्तों की इनायत बरक़रार रहे,
और मुझे क्या चाहिए,
बाकी ज़िन्दगी मानव-हित में
समर्पित कर दूँगा.

काली मुन्नी

कादम्बरी मेहरा

" बड़ी भूख लगी है बुआ। आज मम्मी कहाँ हैं? "

" मम्मी अस्पताल में हैं। आपके एक और बहिनिया हुई है। "

बुआ के स्वर में व्यंग्य था, आँखों में उपहास। चाची की शह पाकर वह हँसी उड़ाने लगीं। ठीक वैसे ही जैसे लूडो के खेल में उसे हराने के बाद वह हँसती थीं।

" और अम्माजी? "

" वह भी गयी हैं तुम्हारी मम्मी के संग। अब चुपचाप से खाना खा लो और सो जाओ। हमें काम बहुत है। "

एक ही थाली में तीनों बहनें खाने बैठीं।

" यह कैसी पराँठी बनाई है? पराँठी तो गोल होती है। ये तो चौरस है और चीड़ी। "

" ऐ खाना है तो खाओ वरना जाकर सो रहो। " चाची ने झाड़ पिलाई।

आज चाची खाना बना रही थीं। यही सबसे अजीब बात थी। बुआ चन्दन को गोद में लिए लिए थालियाँ परोस रही थीं। एक फटे पुराने कम्बल पर उसकी सबसे छोटी बहन शांता, जो केवल तीन साल की थी सो रही थी। वहीं चाची का छह महीने का अनिल पड़ा था। चन्दन, उसका डेढ़ बरस का भाई बुआ की गोदी से उतरता ही नहीं था। उसकी नाक बह रही थी। जनवरी का महीना। हवा में साँझ से ही पाले की खुनक उतर आई थी। ठण्ड लग रही थी। अगर माँ ने रसोई बनाई होती तो अब तक वह पाँचों बच्चों को खिला पिला कर सुला चुकी होतीं।

ठन्डे रसीले आलू और पनीला सा रायता टेढ़ी-मेढ़ी परौंठियों के साथ चुपचाप पेट में उतारने के बाद अर्चना अपनी बहनों के साथ रजाई में दुबक गयी। नौ साल की इस छोटी सी उम्र में, बिना कुछ समझे ही उसे यह पता चल गया था कि उसकी मम्मी ने एक और बहन को जन्म देकर बहुत बड़ा अपराध किया है। वह स्वयं बेहद अभागी पैदा हुई, कारण कि वह अपनी पीठ पर भाई ले आती तो उसके पापा को इतने बच्चों का बोझ न उठाना पड़ता। बुआ और चाची, जो उसकी मम्मी का मज़ाक बना रही थीं। वह उससे सहन नहीं हो रहा था। चाची ने कहा था पेट है कि मटर की फली --- एक जैसे दाने। क्या मम्मी के पेट में मटर का पेड़ है ? छिः छिः, कितनी गन्दी बात ! मम्मी तो कह रही थीं एक दिन कि साबुत मटर मत खाना, पेट दुखेगा।

शादी के दसवें वर्ष में अर्चना की माँ को छठी संतान पैदा हुई है। एक और पुत्री, पाँचवीं लड़की। अर्चना जानती थी कि चार बेटियों के बाद एक पुत्र चन्दन को पाकर उसकी मम्मी रूपा कितनी खुश हुई थीं। उनकी

सारी ममता उमड़कर बेटे पर बरसने लगी थी। अर्चना को याद आया जब पहली बार वह पापा के साथ अपने नवजात भाई को देखने गयी थी, तब मम्मी ने पापा से हाथ जोड़कर विनती की थी।

" देखो मैंने तुम्हें बेटा दे दिया, अब मुझे भी कुछ चाहिए। "

" हाँ, हाँ क्यों नहीं। जो चाहे माँग लो। "

" तो फिर मेरा ऑपरेशन करवा दो प्लीज! अब बस। "

" अरे ऐसे कैसे ऑपरेशन? अम्मा से, बाबूजी से पूछे बिना इतना बड़ा कदम ? "

" तुम समझा दो उन्हें। मेरी क्यों मानने लगे। "

" तुम बात ही ऐसी कर रही हो। अभी तो लड़कों की बेल शुरू हुई है। "

" यूँ क्यों नहीं कहते कि तुम्हारा ही मन नहीं है। "

" नहीं ही समझो। सोचो ज़रा। उधर छोटे भाई के घर में भी अभी कोई बच्चा नहीं है। पता नहीं, होगा भी या नहीं। बेचारा डॉक्टर होते हुए भी अपनी बीबी का इलाज न करवा सका, सात साल हो चले। इस तरह तो हमारा चन्दन ही पूरे घर में एकलौता लड़का रहा। लड़कियों का क्या। ब्याह के अपने घर चली जाती हैं। औलाद, कुलदीपक तो बस यही बचा। कम से कम दो तीन तो हों। "

उधर अम्मा जी ने सुना तो झट रूपा को डाँट दिया।

" हाय-हाय ! इकलौते बेटे पर से उपरेशन कराने चली है। आग लगे पढ़ाई-लिखाई को। कुल-कुटुम्ब तो बढ़ना ही चाहिए। बैलों की जोड़ी के बिना हल नहीं चलता। वैसे ही पुत्रों की जोड़ी के बिना वंश नहीं चलता। अरे सोचो ज़रा सबकी जोड़ी है। राम लक्ष्मण की ले लो, कृष्ण बलदाऊ ले लो या गणेश कार्तिक ले लो। मुए रावण के भी चार भाई बताये हैं शास्त्रों में। ख़बरदार जो फिर कभी नाम लिया उपरेशन का। राम न करे चन्दन को कुछ हो गया तो ? अरे राजा के बाजार वाली ने पेट बंद करवाया था तो चालीस बरस की हो गयी थी। तेरी अभी उम्र तीस भी नहीं हुई। "

रूपा की एक न चली। बार-बार अम्मा जी के कटु वचन विद्युत् प्रहार करते, " चन्दन को कुछ हो गया तो?" सही तो है अब जरा सितारा बदला है। हो सकता है उसके आगे " पुत्तरों की जोड़ी " हो जाए ! परिवार के उपालम्भों से सना उसका वात्सल्य मैला हो चला था। चन्दन के लिए उसने उसे धो-पोंछ कर निखार लिया था। उसका हृदय दो भागों में बट गया। एक में पुत्रियों के लिए कर्तव्य बोध और दूसरे में उसकी तरो-ताजा ममता। अर्चना देखती कि अम्माजी जब आशीर्वाद देतीं तब कहतीं " तेरा बेटा जिए। " या फिर " भाई आवे". अक्सर रूपा, उसकी माँ कहतीं, " मेरा तो एक ही बच्चा है " बेटियों की परवरिश में कहीं कोई कमी नहीं थी मगर वह "पराया धन" थीं। --- एक जिम्मेदारी जो उसका घर खाली करके चली जाएँगी। उसके पूर्वजन्म के पापों का फल।

परन्तु मम्मी अभी पूरी तरह से चन्दन के लाड-चाव भी न कर पाईं थीं कि उसकी एक और बहन आ गयी। रात को उसके पापा, आनन्द बाबू ने घर में पाँव रखा तो सबके मुँह लटके हुए थे। अम्मा जी रो-धोकर बैठी हुई थीं।

" क्या हुआ अम्मा जी? फिर कोई कलेश हो गया क्या ? "

" नहीं! कलेश क्या होना है। लक्ष्मी देवी फिर से पधारी हैं। दूध, फल, खाना, सब लेकर गयी थी। रूपा तो बिफर गयी। रो-रोकर आँखें सुजा ली हैं। चिल्ला-चिल्लाकर मुझे डाँटने लगी कि ले जाओ ये दूध, हरीरे, नहीं पीना है मुझे। बेकार के चोंचले। जच्चा-बच्चा कहते करते उम्र बीत गयी तुम्हारी। अब बख्शो मुझे। मैं तो बेटा उल्टी डाँट खाके बैठी हूँ। "

पापा को खाना परोसते समय अर्चना की चाची ने आग में घी डाला। इसमें उन्हें महारत हासिल है। उनके तो पहले ही दाँव में अनिल पैदा हो गया था। तभी से अपने को बड़ा तीस मार-खाँ समझती हैं। " भैय्या आप पर कितना तरस आता है। पूरी शाम आप टूरिंग अलाउंस के चक्कर में गाँव-गाँव भटकते हैं। अब और भी खपना पड़ेगा। डेढ़ सेर दूध बढ़ाना पड़ेगा पहली तारीख से। लड़की हो या लड़का दूध तो पियेगा ही। खर्चा ही बढ़ा समझिये। धियों का क्या ! पालो-पोसो। बेटों की तरह खिलाओ-पिलाओ और दूसरे लेकर चलते बनें। जनम भर का घाटा। फ़ालतू की भर्ती। " फ़ालतू मुन्नी " नाम रख लो अब।

नई बच्ची के जन्म का समाचार टेढ़े से सुनकर आनंद बाबू पत्नी को देखने गए। रात के दस बज चुके थे। रूपा ने उदास होकर मुँह फेर लिया। आनंद बाबू ने फिर भी पूछ ही लिया। " ठीक तो हो न। बच्ची कहाँ है ?"

" पड़ी है पालने में देखना जरूरी समझो तो। "

" फिर आऊँगा सुबेरे। अभी वह सो रही है तो तुम भी जरा सो लो। "

" जाने से पहले इस फॉर्म पर साइन करते जाओ। " रूपा ने ऑपरेशन की अनुमति वाला फॉर्म पति के आगे कर दिया। आनंद बाबू ने उसे देखा-अनदेखा कर दिया और डपटकर बोले, " तुम यह ऑपरेशन का भूत अपने दिमाग से उतार दो। "

अगले दिन रूपा के देवर डॉ. अशोक उससे मिलने आये तो देखा खाना एक तरफ अनछुआ पड़ा है। " यह क्या भाभी, आपने खाना नहीं खाया रात को ?"

रूपा ने दृढ़ता से उत्तर दिया, " जब तक आप लोग मेरा ऑपरेशन नहीं करवाते, नहीं खाऊँगी। " कहते-कहते रूपा फूट-फूट कर रोने लगी। ड्यूटी की नर्स झटपट डॉ. देवी को बुला लाई। वह उम्र में डॉ. अशोक से कुछ बड़ी थीं। अतः उन्होंने कस कर झाड़ पिलाई। डाँट सुनकर वह बेहद शर्मिंदा हो गए। सच तो कहती हैं कि पढ़-लिखकर भी वह दोनों भाई आधुनिकता की ज़द में नहीं आते थे। घिसी पिटी रूढ़ मान्यताओं के वश में एक साथ छह स्त्रियों का जीवन बिगाड़ रहे थे जिन्होंने अभी जीना भी नहीं सीखा था। डॉ. देवी की दलीलों को सुनकर वह आखिरकार मान गए और अपनी जिम्मेदारी पर अपनी भाभी के ऑपरेशन के फॉर्म पर हस्ताक्षर कर दिए।

अर्चना ने सुना कि उसकी मम्मी का ऑपरेशन हुआ है जिससे उनको अब बच्चे नहीं होंगे। दस दिन बाद जब टाँके खुले तो मम्मी नई बच्ची को लेकर घर आ गईं। आनंद बाबू अभी भी नाराज़ थे और अम्मा जी ने मौन साध लिया था। बुआ और चाची के इशारे चलते रहते। उनके परिहास और कटूक्तियाँ मम्मी चुपचाप सह लेतीं। अर्चना उन्हें बताती तो वह कहतीं, " बकने दे, जीत मेरी ही होगी। " खानेवाले मुँह ज्यादा रूपा के ही थे अतः वह तेरह दिन का नहान नहा कर सीधे रसोई में जा पहुँची। चाची और बुआ ने चैन की साँस ली। अर्चना मम्मी की यूँ तो सहायता करती ही थी, अब और भी जिम्मेदारी से बहनों की देखभाल में हाथ बँटाने लगी। घर में घुसते ही मम्मी ने चन्दन को कलेजे से चिपटा लिया। नई बच्ची एक ओर पड़ी रहती। केवल दूध पिलाने के लिए वह उसको गोद में उठाती थीं।

जनवरी ख़त्म होकर फरवरी शुरू हो गया। बच्ची देखते-देखते सवा महीने की हो गयी। रिवाज़ के मुताबिक घर के पुराने पुरोहित जी नई बच्ची को आशीर्वाद देने के लिए आये। उन्होंने पूछा, " नाम सुधवाया बहूजी ?"

रूपा ने उपेक्षा से कहा, " नहीं। "

" कहो तो पत्रा निकालूँ?"

" नहीं। "

"अरे मना क्यों कर रही है। लगे हाथ नामाक्षर निकलवा ले। बाद में नाम सोच लीजियो।" अम्माजी ने आदेश दिया।

पंडितजी ने पत्रा निकालकर नामाक्षर निकाला। " ' म ' अक्षर शुभ है बहूजी"।

रूपा ने चुपचाप सवा रुपया अंदर से लाकर दक्षिणा दे दी। पंडितजी निराश स्वर में बोले, " चलो बहूजी, यही बहुत है। पाँचवीं है तो क्या हुआ, लक्ष्मी है। बिटिया लोग क्या भाग लाईं क्या पता। "

रूपा चुपचाप सोचती खड़ी रही। ठीक तो कहते हैं, भाग्य का क्या पता। वह स्वयं सुन्दर, सुघड़ व पढ़ी लिखी। पर भाग्य में यह धियों का धाड़ा ! दूसरी ओर उसकी देवरानी। न सुन्दर, न सुघड़, न पढ़ी लिखी ! और ऊपर से माँदी --- दमें की मरीज़। मगर किस्मत देखो ! सबसे अधिक कमाऊ डॉक्टर पति और पहले ही वार में चाँद सा बेटा।

पंडितजी के जाने के बाद अम्मा जी ने सबसे कहा ' म ' अक्षर से नाम सोचो। कोई और कुछ बोले कि अर्चना की चाची चहकीं, " मेरी मानो तो मुक्ति नाम रख लो। तुम्हारी पूजा में अब और क्या बाकी है ? अर्चना, आरती, माला, शांति और चन्दन। बस अब ' मुक्ति ' मिल गयी।

रूपा चुप। बुआ ने फैसला दिया, " मुन्नी " ही ठीक है। यही तो बुलाते हैं सब। म से मुन्नी। "
चाची फिर से चमकी, " आय हाय ! फिर तो काली मुन्नी बुलाना पड़ेगा। रंग तो देखो कैसा पक्का है, जैसे नौकरों के बच्चों का होता है। "

अर्चना, जो अब तक चुपचाप सब सुन रही थी, चिल्लाकर रो पडी। " हमारी मुन्नी काली नहीं है। " अम्माँजी सांत्वना के स्वर में बोलीं, " सारा-सारा दिन धूप में पडी रहेगी तो काली तो हो ही जायेगी।"

फिर भी बच्ची का नाम काली मुन्नी पड़ गया। अर्चना देखती कि दूध पिलाते समय या तेल लगाते समय मम्मी उसे बड़े प्यार से निहारतीं और धीमे-धीमे स्वर में दुलार करतीं, " काली मुन्नी, टेढ़ी पूँछ, अता-पता अपनी माँ से पूछ। " या फिर कहतीं , " तू फ़ालतू मुन्नी नहीं है। तुझे तो मैं डॉ. देवी के जैसा बनाऊँगी। " मुन्नी खिल-खिल हँसती।

आनंद बाबू ने एक नौकर ख़ास बच्चों के काम के लिए अलग से रख दिया। नौकर क्या था ---- सीधा देहात से कोई पंद्रह-सोलह वर्ष का गँवई चला आया था। चौकीदार के गाँव का था। गारंटी थी सो रख लिया और उसको नौकरों का शाश्वत नाम 'रामू' दे दिया गया।

बड़ी बैठक, एक बड़ा सा कमरा था, जिसमें काश्मीरी काला 'गब्बा' बिछा रहता था। सारा दिन सबका यहीं उठना बैठना रहता। रात को यह काला दरी नुमा गलीचा तहा कर एक ओर रख दिया जाता था अन्य कमरों के भी छोटे-बड़े दरी खेस आदि इसपर सरिया दिए जाते थे। फिर निवार के पलंग बिछा दिए जाते थे सबके सोने के लिए। सुबह पलंग वापिस बाहर बरामदे में चले जाते और फर्श पर झाड़ू बुहारू करके पुनः दरियाँ गद्दे बिछा दिए जाते।

होली के कुछ पहले के दिन। दिन में गर्मी पर रात को ठण्ड। मुन्नी दो महीने की हो चली थी। शाम को दूध आदि पिलाकर रूपा रसोई में चली गयी। अम्माजी वहीं सो रही थीं। दूध पीकर मुन्नी भी सो गयी। रूपा ने उसे अम्माँजी के पास ही लिटा दिया । पास ही अर्चना अपनी छोटी बहनो के संग खेल रही थी। सब कुछ सामान्य था। रात को आठ बजे बच्चों को खाना आदि खिलाने के बाद रूपा मुन्नी को दूध पिलाने बड़े कमरे में आई। रामू चारपाइयाँ लगा चुका था। मुन्नी कहीं नहीं दिखी। रूपा बारी-बारी से सब कमरों में देख आई। पलंगों के नीचे झाँका, गोल कमरे में सोफे के आगे पीछे, संदूकों वाली कोठरी में। दूध से भरी उसकी छातियाँ रिसने लगीं। तीन घंटे से अधिक समय हो गया था, बच्ची भूखी थी। कहीं से रोने की आवाज़ भी तो आती। घबराहट होने लगी। जने-जने से पूछा। देवरानी ने सुना तो व्यंग्य से बोली, "आय-हाय ! मरी जा रही हैं भाभी! एक गिनती में कम हो गयी ! --- पिछला दरवाज़ा पलंगों के लिए खुला था। माली बतला रहा था कि लकड़बग्घा आता है आजकल। "

रूपा दम साधे ढूँढती रही। बड़े कमरे में देखा तो सचमुच बाहरी स्प्रिंगदार दरवाज़ा चौपट्ट खुला पड़ा था। रामू से पूछा। मगर वह मूढ़मति कुछ न बता पाया। शोर मच गया। रूपा रुआँसी हो गयी मगर देवरानी के ताने फिर बरसे। " पेट पोंछनी ठहरी। सबसे छोटी औलाद में तो माँ के प्राण बसते हैं। घर की लक्ष्मी कम पड़ जाएगी लकड़बग्घा खा गया तो। "

अभी आधे लोगों का खाना बाकी था। रूपा वापिस रसोई में अँगीठी के सामने जा बैठी और चुपचाप आँसू बहाने लगी। सब लोग अपनी-अपनी अटकलें लड़ा रहे थे। अर्चना ने माँ को रोते हुए देखा तो पूछा, " मम्मी क्या हुआ ? "

सिसकते हुए आवाज़ को संयत करके रूपा ने कहा , " हमारी मुन्नी को कोई उठा ले गया। शाम को अंदर बड़े कमरे में सो रही थी। रामू ने दरवाज़ा खुला छोड़ दिया। लगता है कि लकड़बग्घा उठा ले गया। खा गया होगा।" और वह फूट फूट कर रोने लगी।

" पर वह तो काले गब्बे पर सो रही थी। अम्मा जी उठीं तो अपनी सफ़ेद शॉल से ढक दिया उसे। वहीं तो थी। "

" कहाँ? चल दिखा मुझे। "

अर्चना माँ को बड़े कमरे में ले गयी। पर वहाँ तो चारपाइयाँ लग चुकी थीं। रामू को फिर से बुलाया गया। पूछा ," रामू, यहाँ अम्मा जी का बड़ा सफ़ेद शाल पड़ा था। तुमने उठाया क्या ? "

" ऊ तो पड़ा ही रहां। हम सब साथे ही लपेट कर धर दीनी।

" खोलो। गलीचे हटाओ. गब्बा खोलो। " अर्चना चिल्लाई। सारा परिवार इकठ्ठा हो गया। बिस्तरों वाले तखत पर सब छोटे-बड़े दरी बिछवानो के बीच काला गब्बा लिपटा रखा था। खोलने पर सफ़ेद दुशाले में लिपटी मुन्नी मिल गयी। डॉ. अशोक ने नब्ज़ देखी धड़कन टटोली। सब सही था। मुन्नी बच गयी थी। रूपा ने कसकर बच्ची को छाती से भींच लिया और फूट-फूट कर जोर-जोर से रो पडी। उसके धैर्य का बाँध टूट गया था। रोते- रोते चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी - "मैंने माँगी नहीं थी एक और फालतू मुन्नी। जब मुझे इसके आने का पता चला तो मैंने डॉ. देवी से कहा कि इसे निकाल दो। मगर तुम सबको दूसरा लड़का चाहिए था। उसी हाँ-न में देर हो गयी। फिर भी मैंने दाई से देसी दवा मँगवाई। उसने कुनैन की गोलियाँ खिलाईं मुझे। डॉ. देवी को पता चला तो उन्होंने मुझको बहुत डाँटा। उससे मुझे कुछ हो जाता तो मेरे सब बच्चे लुटक जाते। फिर भी इस बच्ची पर उनका कोई असर नहीं हुआ। इसे आना ही था और इसने साबित कर दिया है सबके सामने कि यह जियेगी। यह किसी पर भार नहीं है। " सब कुछ बक जाने के बाद भी रूपा रोती रही। आनंद बाबू को उसके पास छोड़कर सब खिसियाकर चले गए।

पुनश्चः

इस घटना के तुरंत बाद आनंद बाबू नौकरी में तरक्की पा गए और उनका तबादला एक बड़े शहर में हो गया। रूपा एक नए घर में जा बसी। संयुक्त परिवार की तमाम उलझनों व विषाक्त वातावरण से दूर। उसकी 'पेट पोंछनी ' उसके लिए वरदान बन कर आई। मुन्नी बड़ी होने लगी और ज्यों-ज्यों बढ़ती, वह और निखरती। जल्दी चलने लगी, जल्दी बोलने लगी। उसकी प्यारी सूरत और बोली हरेक को मोहने लगी। जब स्कूल जाने की बारी आई तो रूपा ने उसका नाम मोहिनी रख दिया। आईने के सामने खड़ी होकर वह खुद को बुलाती मोहिनी और माँ की नक़ल में पूछती तू डॉक्टर बनेगी न बड़ी होकर। बहनों की दुलारी बड़ी होकर एक सुन्दर सलोनी युवती बनी और यही नहीं रूपसी रूपा की काली मुन्नी अपने मेडिकल कॉलेज में ब्यूटी क्वीन चुनी गयी

और हीरों का ताज पहना। डॉक्टर बनी तो स्वर्ण पदक लेकर विश्वविद्यालय में प्रथम आई। गीत-संगीत और नृत्य में अपनी सब बहनों से अव्वल रही। आज भी साठ वर्ष की उम्र में स्टेज पर फ़िल्मी गीतों पर उनका एक कार्यक्रम नृत्य का जरूर रखा जाता है उनकी छात्राओं के आग्रह पर।

जन्म से ही उनका बायाँ हाथ अधिक सक्रिय था इसलिए सिलाई-कढ़ाई-कटाई यहाँ तक शल्य चिकित्सा भी वह उलटे हाथ से करती हैं। सम्प्रति वह एक ख्यातिप्राप्त स्त्री रोग विशेषज्ञ एवं शल्य चिकित्सक हैं। न केवल अपने प्रदेश में वरन पूरे भारत में परीक्षक व विशेषज्ञ के रूप में बुलाई जाती हैं। भारत से बाहर भी श्री लंका, सिंगापुर, थाईलैंड आदि देशों में परामर्श और परीक्षक के लिए बुलाई जाती हैं। देश विदेश से अनेक ख्यातिपत्र और सम्मान उनको मिले।

उनकी दोनों बेटियाँ भी उनकी तरह लंदन और क़तर में उच्चतम पदों पर डॉक्टर हैं।

गरीबों की बेटियाँ...

डॉ. आर. के. तिवारी "मतङ्ग"

होते ही भोर, जोर से
रोती हैं बेटियाँ
कुछ बदनसीब भोर में
सोती हैं बेटियाँ.

झाड़ू से जुझारू बनें
उड़ान भी भरें
घुटती रहीं हैं फिर भी
हमारी ये बेटियाँ.

जंगल से ला के लकड़ी
बनाती हैं रोटियाँ
जंगल में भेड़ियों को
खिलाती हैं बोटियाँ.

माँ-बाप को पलक पे
बिठाती हैं बेटियाँ
सबके सितम गले से
लगाती हैं बेटियाँ.

बाहर से खुश हैं दिख रहीं
मुस्कान भी दिखे
भीतर से डरी सहमी हैं
हमारी बेटियाँ.

हर दिल में बीज प्यार का
बोती हैं बेटियाँ
नफरत का भी शिकार
होती रहती बेटियाँ.

वहशी दरिंदों की नज़र में
गर वो आ गईं
नंगी सरे बाजार भी
होती हैं बेटियाँ.

जीना सिखाती सबको
जीतीं अपनों के लिए
फिर भी हैं लूटी जाती
अपने घर में बेटियाँ.

हिन्दी के योद्धा : प्रेमचंद का भाषा चिन्तन

प्रो. अमरनाथ

आज भी प्रेमचंद (३१.७.१८८०-८.१०.१९३६) सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले हिन्दी के लेखकों में हैं. बड़े-बड़े विद्वानों के निजी पुस्तकालयों से लेकर रेलवे स्टेशनों के बुक स्टाल तक प्रेमचंद की किताबें मिल जाती है. प्रेमचंद की इस लोकप्रियता का एक कारण उनकी सहज सरल भाषा भी है. किन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि जहाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं की ओर से प्रेमचंद के साहित्य पर अनेक संगोष्ठियाँ आयोजित होती रहती हैं वहीं उनके भाषा चिन्तन पर कहीं किसी संगोष्ठी के आयोजन की खबर सुनने में नहीं आती।

आज भी कहा जा सकता है कि इस देश की राष्ट्रभाषा के आदर्श रूप का सर्वोत्तम उदाहरण प्रेमचंद की भाषा है. प्रेमचंद का भाषा-चिन्तन जितना तार्किक और पुष्ट है उतना किसी भी भारतीय लेखक का नहीं है. 'साहित्य का उद्देश्य' नाम की उनकी पुस्तक में भाषा-केन्द्रित उनके चार लेख संकलित हैं जिनमें भाषा सम्बंधी सारे सवालों के जवाब मिल जाते हैं. इन चारो लेखों के शीर्षक है, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्याएँ', 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार', 'हिन्दी–उर्दू की एकता' तथा 'उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी'। 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार' शीर्षक निबंध वास्तव में बम्बई में सम्पन्न राष्ट्रभाषा सम्मेलन में स्वगताध्यक्ष की हैसियत से २७ अक्टूबर १९३४ को दिया गया उनका व्याख्यान है. इसमें वे लिखते है, " समाज की बुनियाद भाषा है. भाषा के बगैर किसी समाज का खयाल भी नहीं किया जा सकता. किसी स्थान की जलवायु, उसके नदी और पहाड़, उसकी सर्दी और गर्मी और अन्य मौसमी हालातें, सब मिल-जुलकर वहाँ के जीवों में एक विशेष आत्मा का विकास करती हैं, जो प्राणियों की शक्ल-सूरत, व्यवहार, विचार और स्वभाव पर अपनी छाप लगा देती हैं और अपने को व्यक्त करने के लिए एक विशेष भाषा या बोली का निर्माण करती हैं. इस तरह हमारी भाषा का सीधा सम्बंध हमारी आत्मा से हैं...मनुष्य में मेल-मिलाप के जितने साधन हैं उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है. राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते जल्द या देर में कमजोर पड़ सकते हैं और अक्सर बदल जाते हैं. लेकिन भाषा का रिश्ता समय की, और दूसरी विखरने वाली शक्तियों की परवाह नहीं करता और इस तरह से अमर हो जाता है. (साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ -११८)

पिछले कुछ वर्षों से बोली और भाषा के रिश्ते को लेकर बहुत बाद-विवाद चल रहा है. भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि कुछ हिन्दी की बोलियाँ हिन्दी परिवार से अलग होकर संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की माँग कर रही हैं. इस सम्बंध को लेकर प्रेमचंद लिखते हैं, "जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जाता है, यह स्थानीय भाषाएँ किसी सूबे की भाषा में जा मिलती हैं और सूबे की भाषा एक सार्वदेशिक भाषा का अंग बन जाती हैं. हिन्दी ही में ब्रजभाषा, बुन्देलखंडी, अवधी, मैथिल, भोजपुरी आदि भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, लेकिन जैसे छोटी-छोटी धाराओं के मिल जाने से एक बड़ा दरिया बन जाता है, जिसमें मिलकर नदियाँ अपने को खो देती हैं, उसी तरह ये सभी प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दी की मातहत हो गयी हैं और आज उत्तर भारत का एक देहाती भी हिन्दी समझता है और अवसर पड़ने पर बोलता है. लेकिन हमारे मुल्की फैलाव के साथ हमें एक ऐसी भाषा की जरूरत पड़ गयी है जो सारे हिन्दुस्तान में समझी और बोली जाए, जिसे हम हिन्दी या गुजराती या मराठी या उर्दू न कहकर हिन्दुस्तानी भाषा कह सकें, जैसे हर एक अँग्रेज या जर्मन या

फ्रांसीसी फ्रेंच या जर्मन या अँग्रेजी भाषा बोलता और समझता है. हम सूबे की भाषाओं के विरोधी नहीं हैं. आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें करें. लेकिन एक कौमी भाषा का मरकजी सहारा लिए बगैर एक राष्ट्र की जड़ कभी मजबूत नहीं हो सकती. " (वही, पृष्ठ – १२१)

प्रेमचंद चिन्ता व्यक्त करते हैं, "अँग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अँग्रेजी भाषा का है. अँग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते हैं लेकिन अँग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन में डाले हुए हैं. अँग्रेजी राज्य की जगह आप स्वराज्य चाहते हैं. उनके व्यापार की जगह अपना व्यापार चाहते हैं, लेकिन अँग्रेजी भाषा का सिक्का हमारे दिलों पर बैठ गया है. उसके बगैर हमारा पढ़ा-लिखा समाज अनाथ हो जाएगा. "(वही, पृष्ठ – १२१) प्रेमचंद अँग्रेजी जानने वालों और अँग्रेजी न जानने वालों के बीच स्तर-भेद का तार्किक विवेचन करते हुए कहते हैं, "पुराने समय में आर्य और अनार्य का भेद था, आज अँग्रेजीदाँ और गैर-अँग्रेजीदाँ का भेद है. अंग्रेजीदाँ आर्य हैं. उसके हाथ में अपने स्वामियों की कृपादृष्टि की बदौलत कुछ अख्तियार है, रोब है, सम्मान है. गैर-अँग्रेजीदाँ अनार्य हैं और उसका काम केवल आर्यों की सेवा-टहल करना है और उसके भोग-विलास और भोजन के लिए सामग्री जुटाना है. यह आर्यवाद बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, दिन दूना रात चौगुना.....हिन्दुस्तानी साहबों की अपनी बिरादरी हो गयी है, उनका रहन-सहन, चाल-ढाल, पहनावा, बर्ताव सब साधारण जनता से अलग है, साफ मालूम होता है कि यह कोई नई उपज है." (वही, पृष्ठ-१२२) प्रेमचंद हमें आगाह करते हैं, "जबान की गुलामी ही असली गुलामी है. ऐसे भी देश, संसार में हैं जिन्होंने हुक्मराँ जाति की भाषा को अपना लिया. लेकिन उन जातियों के पास न अपनी तहजीब या सभ्यता थी और न अपना कोई इतिहास था, न अपनी कोई भाषा थी. वे उन बच्चों की तरह थे, जो थोड़े ही दिनों में अपनी मातृभाषा भूल जाते हैं और नयी भाषा में बोलने लगते हैं. क्या हमारा शिक्षित भारत वैसा ही बालक है? ऐसा मानने की इच्छा नहीं होती, हालाँकि लक्षण सब वही हैं. " (वही, पृष्ठ – १२४)

कौमी भाषा के स्वरूप पर प्रेमचंद ने बहुत गम्भीरता के साथ और तर्क व उदाहरण देकर विचार किया है. वे कहते हैं, "सवाल यह होता है कि जिस कौमी भाषा पर इतना जोर दिया जा रहा है, उसका रूप क्या है? हमें खेद है कि अभी तक उसकी कोई खास सूरत नहीं बना सके हैं, इसलिए कि जो लोग उसका रूप बना सकते थे, वे अँग्रेजी के पुजारी थे और हैं. मगर उसकी कसौटी यही है कि उसे ज्यादा से ज्यादा आदमी समझ सकें. हमारी कोई सूबेवाली भाषा इस कसौटी पर पूरी नही उतरती. सिर्फ हिन्दुस्तानी उतरती है, क्योंकि मेरे ख्याल में हिन्दी और उर्दू दोनो एक जबान हैं. क्रिया और कर्ता, फेल और फाइल जब एक है तो उनके एक होने में कोई संदेह नहीं हो सकता. उर्दू वह हिन्दुस्तानी जबान है, जिसमें फारसी-अरबी के लफ्ज ज्यादा हों, इसी तरह हिन्दी वह हिन्दुस्तानी है, जिसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा हों. लेकिन जिस तरह अँग्रेजी में चाहे लैटिन या ग्रीक शब्द अधिक हों या ऐंग्लोसेक्सन, दोनो ही अँग्रेजी हैं, उसी भाँति हिन्दुस्तानी भी अन्य भाषाओं के शब्दों में मिल जाने से कोई भिन्न भाषा नहीं हो जाती. साधारण बातचीत में तो हम हिन्दुस्तानी का व्यवहार करते ही हैं. (वही, पृष्ठ-१२४)

प्रेमचंद ने उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी, भाषा के तीनों रूपों का अलग-अलग उदाहरण दिया है. उनके द्वारा दिया गया हिन्दुस्तानी का उदाहरण है - " एक जमाना था, जब देहातों में चरखा और चक्की के बगैर कोई घर खाली न था. चक्की-चूल्हे से छुट्टी मिली, तो चरखे पर सूत कात लिया. औरतें चक्की पीसती थी. इससे उनकी

तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी रहती थी, उनके बच्चे मजबूत और जफाकश होते थे. मगर अब तो अँग्रेजी तहजीब और मुआशरत ने सिर्फ शहरों में ही नहीं, देहातों में भी कायापलट दी है. हाथ की चक्की के बजाय अब मशीन का पिसा हुआ आटा इस्तोमाल किया जाता है. गाँवों में चक्की न रही तो चक्की पर का गीत कौन गाए ? जो बहुत गरीब हैं वे अब भी घर की चक्की का आटा इस्तेमाल करते हैं. चक्की पीसने का वक्त अमूमन रात का तीसरा पहर होता है. सारे शाम ही से पीसने के लिए अनाज रख लिया जाता है और पिछले पहर से उठकर औरतें चक्की पीसने बैठ जाती हैं.

उक्त उदाहरण देने के बाद प्रेमचंद लिखते हैं, "इस पैराग्राफ को मैं हिन्दुस्तानी का बहुत अच्छा नमूना समझता हूँ, जिसे समझने में किसी भी हिन्दी समझने वाले आदमी को जरा भी मुश्किल न पड़ेगी. " (वही, पृष्ठ-१२५) किन्तु प्रेमचंद अपने समय के यथार्थ को भली-भाँति समझते थे. उन्होंने लिखा है, "एक तरफ हमारे मौलवी साहबान अरबी और फारसी के शब्द भरते जाते है, दूसरी ओर पंडितगण, संस्कृत और प्राकृत के शब्द ठूँस रहे हैं और दोनो भाषाएँ जनता से दूर होती जा रही हैं. हिन्दुओं की खासी तादाद अभी तक उर्दू पढ़ती आ रही है, लेकिन उनकी तादाद दिन-प्रति-दिन घट रही है. मुसलमानों ने हिन्दी से कोई सरोकार रखना छोड़ दिया. तो क्या यह तै समझ लिया जाय कि उत्तर भारत में उर्दू और हिन्दी दो भाषाएँ अलग-अलग रहेंगी ? उन्हें अपने-अपने ढंग पर, अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार बढ़ने दिया जाय. उनको मिलने की और इस तरह उन दोनों की प्रगति को रोकने की कोशिश न की जाय? या ऐसा सम्भव है कि दोनों भाषाओं को इतना समीप लाया जाए कि उनमें लिपि के सिवा कोई भेद न रहे. बहुमत पहले निश्चय़ की ओर है. हाँ, कुछ थोड़े से लोग ऐसे भी है जिनका ख्याल है कि दोनों भाषाओं में एकता लायी जा सकती है और इस बढ़ते हुए फर्क को रोका जा सकता है. लेकिन उनका आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज है. ये लोग हिन्दी और उर्दू नामों का व्यवहार नहीं करते, क्योंकि दो नामों का व्यवहार उनके भेद को और मजबूत करता है. यह लोग दोनों को एक नाम से पुकारते हैं और वह हिन्दुस्तानी है."

(वही, हिन्दी–उर्दू एकता शीर्षक निबंध, पृष्ठ - १३९)

कहना न होगा, प्रेमचंद द्वारा प्रस्तावित हिन्दुस्तानी को नकार कर और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने के इतने साल बाद भी, प्रेमचंद द्वारा दिए गए उक्त उद्धरण में सिर्फ दो शब्द (जफाकश और मुआशरत) ऐसे हैं जिनको लेकर हिन्दी वालों की थोड़ी मुश्किल हो सकती है. किन्तु भाषा की सरलता आज भी विमुग्ध करने वाली है. प्रेमचंद और गाँधीजी के सुझाव न मानकर हमने एक ही भाषा को हिन्दी और उर्दू में बाँट दिया, उन्हें मजहब से जोड़ दिया और इस तरह दुनिया की सबसे समृद्ध, बड़ी और ताकतवर हिन्दी जाति को धर्म के आधार पर दो हिस्सों में बाँटकर कमजोर कर दिया और उनके बीच सदा-सदा के लिए अलंघ्य और अटूट चौड़ी दीवार खड़ी कर दी.

हमने राजभाषा हिन्दी और अपने साहित्य की भाषा को भी जिस संस्कृतनिष्ठता से बोझिल बना दिया है उससे आगाह करते हुए प्रेमचंद ने उसी समय कहा था, "हिन्दी में एक फरीक ऐसा है, जो यह कहता है कि चूँकि हिन्दुस्तान की सभी सूबेवाली भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं और उनमें संस्कृत के शब्द अधिक हैं इसलिए हिन्दी में हमें अधिक से अधिक संस्कृत के शब्द लाने चाहिए, ताकि अन्य प्रान्तों के लोग उसे आसानी से समझें. उर्दू की मिलावट करने से हिन्दी का कोई फायदा नहीं. उन मित्रों को मैं यही जवाब देना चाहता हूँ कि ऐसा करने से दूसरे सूबों के लोग चाहे आप की भाषा समझ लें, लेकिन खुद हिन्दी बोलने वाले न समझेंगे. क्योंकि, साधारण हिन्दी बोलने वाला आदमी शुद्ध संस्कृत शब्दों का जितना व्यवहार करता है उससे कहीं ज्यादा फारसी

शब्दों का. हम इस सत्य की ओर से आँखें नहीं बन्द कर सकते और फिर इसकी जरूरत ही क्या है कि हम भाषा को पवित्रता की धुन में तोड़-मरोड़ डालें. यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर होता है, लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते-जुलते रहने की कोशिश किया करती है. लिखित भाषा की खूबी यही है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले." (वही, पृष्ठ १२८)

इस सम्बंध में महात्मा गाँधी की प्रशंसा करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है, " कितने खेद की बात है कि महात्मा गाँधी के सिवा किसी भी दिमाग ने कौमी भाषा की जरूरत नहीं समझी और उस पर जोर नहीं दिया. यह काम कौमी सभाओं का है कि वह कौमी भाषा के प्रचार के लिए इनाम और तमगे दें, उसके लिए विद्यालय खोलें, पत्र निकालें और जनता में प्रोपेगैंडा करें. राष्ट्र के रूप में संघटित हुए बगैर हमारा दुनिया में जिन्दा रहना मुश्किल है. यकीन के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता कि इस मंजिल पर पहुँचने की शाही सड़क कौन सी है. मगर दूसरी कौमों के साथ कौमी भाषा को देखकर सिद्ध होता है कि कौमियत के लिए लाजिमी चीजों में भाषा भी है और जिसे एक राष्ट्र बनना है उसे एक कौमी भाषा भी बनानी पड़ेगी." (वही, पृष्ठ – १३२)

प्रेमचंद ने लिपि के सवाल पर भी गम्भीरता के साथ विचार किया है और साफ शब्दों में अपना मत व्यक्त किया है. "प्रान्तीय भाषाओं को हम प्रान्तीय लिपियों में लिखते जाएँ, कोई एतराज नहीं, लेकिन हिन्दुस्तानी भाषा के लिए एक लिपि रखना ही सुविधा की बात है, इसलिए नहीं कि हमें हिन्दी लिपि से खास मोह है बल्कि इसलिए कि हिन्दी लिपि का प्रचार बहुत ज्यादा है और उसके सीखने में भी किसी को दिक्कत नहीं हो सकती. लेकिन उर्दू लिपि हिन्दी से बिलकुल जुदा है और जो लोग उर्दू लिपि के आदी हैं, उन्हें हिन्दी लिपि का व्यवहार करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता. अगर जुबान एक हो जाय तो लिपि का भेद कोई महत्व नहीं रखता." (वही, पृष्ठ -१३२) और अन्त में निष्कर्ष देते हैं, "लिपि का फैसला समय करेगा. जो ज्यादा जानदार है वह आगे आएगी. दूसरी पीछे रह जाएगी. लिपि के भेद का विषय छेड़ना घोड़े के आगे गाड़ी को रखना होगा. हमें इस शर्त को मानकर चलना है कि हिन्दी और उर्दू दोनो ही राष्ट्र-लिपियाँ हैं और हमें अख्तियार है, हम चाहे जिस लिपि में उसका (हिन्दुस्तानी का) व्यवहार करें. हमारी सुविधा हमारी मनोवृत्ति और हमारे संस्कार इसका फैसला करेंगे. " (वही, पृष्ठ – १३३) किन्तु प्रेमचंद को विश्वास है कि "हम तो केवल यही चाहते हैं कि हमारी एक कौमी लिपि हो जाए." दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के चतुर्थ दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि " अगर सारा देश नागरी लिपि का हो जाएगा तो सम्भव है मुसलमान भी उस लिपि को कुबूल कर लें. राष्ट्रीय चेतना उन्हें बहुत दिन तक अलग न रहने देगी. " (साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ – ११७)

प्रेमचंद के सुझावों पर अमल न करके हमने देश की भाषा नीति को लेकर जो मार्ग चुना उसके घातक परिणाम आज हमारे सामने हैं. अँग्रेजी के वर्चस्व के नाते हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी और गाँवों की छुपी हुई प्रतिभाएँ अनुकूल अवसर के अभाव में दम तोड़ रही हैं. देश में मौलिक चिन्तन चुक गया है और दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद हम सिर्फ नकलची बनकर रह गए हैं.

बहरहाल, हम इस महान लेखक के रचनात्मक योगदान तथा उनके भाषा सम्बंधी चिन्तन का स्मरण करते हैं और समाज के प्रबुद्ध जनों से उस पर अमल करने की अपील करते हैं.

हाँ, माँ रफूगर ही तो है

डॉ. अलका अग्रवाल

पिताजी और चाचा के बीच
रिश्ते खिंचे-खिंचे से थे
लगता था, सम्बन्धों के धागे
टूट ही जाएँगे इस बार
पर, माँ अपनी आत्मीयता के
नाजुक से धागे से
फिर सब यथावत् कर देती
हाँ, माँ रफूगर ही तो है।

कभी-कभी दादी से भी
बात-बेबात लड़ बैठते पिता
तनाव फैल जाता था घर में
शीत युद्ध पसरा रहता था
दोनों परेशान, पर चुपचाप
तब माँ के प्यार की ऊष्मा का
धागा ही काम आता था
हाँ, माँ रफूगर ही तो है।

अड़ोस-पड़ोस में किसी के बीच
जब भी होता कोई मन-मुटाव
रिश्ते होने लगते तार-तार
माँ को किया जाता था याद
माँ अपनी सहनशीलता के धागे से
सब कुछ ऐसा सिलती कि
कोई रफू देख न पाता
हाँ, माँ रफूगर ही तो है।

ननिहाल में भी कभी
मामी और नानी के बीच
हो जाती थी तकरार
तब होती थी हमेशा माँ की
उपस्थिति की दरकार
उनका स्नेह ही सम्बन्धों को
बिना गाँठ के सिल देता
हाँ, माँ रफूगर ही तो है,
और हाँ, जादूगर भी तो है।

कोरोना संकटकाल में वरदान हो सकती है "आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस"

उमेश पंसारी
(विद्यार्थी, युवा नेतृत्वकर्ता व समाजसेवी,
एन.एस.एस. और कॉमनवेल्थ स्वर्ण पुरस्कार विजेता)

मानवीय सभ्यता और इतिहास चाहे विज्ञान से कितनी ही दूरी पर क्यों न रहे हों, किन्तु आधुनिक समय में विज्ञान मानव के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है | विज्ञान और तकनीक ने एक जाल हमारे चहुँ ओर निर्मित कर दिया है, जिसके बिना हमें जीवनयापन करना असमर्थ प्रतीत होता है | मुर्गे की बाँग की जगह वैज्ञानिक अलार्म घडी या मोबाइल बजकर हमें जगाते है और पंखे, कूलर या ऐसा कुछ सुकून की नींद सुलाते हैं | इन सभी उपकरणों की तकनीक का ही तो नाम है – "विज्ञान" | आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को हिंदी में "कृत्रिम बुद्धि" कहा जाता है | जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कि मशीन में सोचने-समझने और निर्णयन क्षमता का विकसित होना। इंसानों की भाँति बुद्धिमत्ता यदि किसी मशीनी दिमाग में आ जाए तो यह किसी चमत्कार से कम नहीं है | यही तो है "विज्ञान का चमत्कार" जिसकी आज संकटकालीन स्थिति में बहुतों को सर्वाधिक आवश्यकता है |

वर्तमान का सहारा और भविष्य के सौन्दर्य की उम्मीद विज्ञान ही है | कोरोना संकटकाल से जूझते विश्व ने तकनीकी ज्ञान का उपयोग करके अनेक जाँच मशीने तैयार कर ली हैं | भारत में अप्रैल महीने में एक दिन ऐसा भी आया, जिसमें एक दिन में दर्ज कोरोना संक्रमित व्यक्तियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक भारत की थी | ऐसी भयावह स्थिति में "जनता कर्फ्यू" और "सामाजिक दूरी" का पालन स्वाभाविक है | किन्तु यह अंतिम हल नहीं है | खान-पान की वस्तुओं का व्यापार बंद करना, दवाइयों की दुकाने और चिकित्सा क्षेत्र से जुडी गतिविधियों पर रोक लगाना सम्भव नहीं हैं, लेकिन खतरा तो इनमें भी है | इसीलिए विचार आता है, कि क्यों न रश्मि की मदद ली जाए ? अब आप सोच रहे होंगे कि यह रश्मि कौन है?

जरा ठहरिये | रश्मि किसी लड़की का नाम नहीं है, अपितु आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के अंतर्गत भारत में निर्मित विश्व की पहली हिंदीभाषी रोबोट है, जिसमें बोलने, सुनने, देखने, समझने, याद रखने और बात करने की कुशलता है | समाज में रश्मि जैसे रोबोट्स का कोरोना संकटकाल में कुछ चयनित क्षेत्रों में व्यापार, प्रशासनिक व्यवस्था, मोनिटरिंग, डाटा कलेक्शन, जागरूकता, मास्क वितरण, सैनेटाईजेशन, वैक्सीन पंजीकरण हेप्लर और वाहन चालक में उपयोग किया जा सकता है | इससे संक्रमण का फैलाव कम होगा साथ ही प्रशासन और सरकार को व्यवस्थाओं में मदद मिलेगी | वर्तमान में यह केवल एक विचार है, जो कहीं न कहीं भविष्य में ऐसा होने की आशा के साथ जीवित है | इसके परिपालन के लिए हमारे समाज को विज्ञान को और अधिक समझने की आवश्यकता है ताकि विज्ञान का प्रयोग सीमित, सुलभ और सही प्रयोगों के लिए ही हो व प्राकृतिक क्षति न हो |

दिवस है बीत चला

'मीनू' मीना सिन्हा

गहराती शाम है।
चलना अविराम है।

हिम्मत हारो न तुम -
जीवन संग्राम है।

दिवस है बीत चला।
चिंतन से क्या भला।
क्यों सोचते हो तुम -
अपनों ने ही छला।

न अपने न पराए।
मेघा गगन छाए।
दामिनी दमक रही -
विगत को बिसराए।

आएगी अब रात
भूलें सारी बात।
सजी-धजी चलेगी -
अपनी भी बारात।

घबराएँ मत अभी ।
देखेंगे फिर कभी।
जैसा भी समय हो -
संग-साथ हैं सभी ।

मोर है नाच रहा।
अश्रु से भीग रहा।
मोती हंस चुनता -
मौत को भूल रहा।

निशा गहराएगी।
विगत बिसराएगी।
यामिनी का स्वागत -
फिर भोर आएगी।

गाँधी के देश में गाँधी की अनिवार्यता

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'
(मातृभाषा उन्नयन संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष)

देश की माटी का गौरव, समाज का अस्तित्व, जन का मान, सर्वहारा वर्ग की चिन्ता, हर तबके का विशेष ख़्याल, भाषाई एकता और अखण्डता के बीच हिन्दी की स्वीकार्यता, राष्ट्र की आज़ादी के रण के नायक, नेतृत्वकर्ता, सत्यवादी, मितव्ययी, स्वावलम्बी, समरस और सर्वहितैषी, राजनीति की कलुषता से परे, राष्ट्र तत्व का स्वाभिमान, सामंजस्यता की अद्‌भुत, अनुपम मिसाल, उम्दा शिक्षक, श्रेष्ठ पत्रकार, कुशल राष्ट्रनायक, संगठन कौशल के धनी, समभाव का पर्याय और आसान शब्दों में कहें तो भारतीय आज़ादी की लड़ाई का अकल्पनीय पर्याय यदि किसी को माना जा सकता है तो वह साबरमती के संत यानी मोहनदास करमचंद गाँधी से महात्मा गाँधी तक की यात्रा के यात्री 'बापू' को माना जा सकता है।

क़द-काठी से अकल्पनीय किन्तु यथार्थ के आलोक में अँग्रेज़ी हुकूमत के सामने निहत्थे, निडर और निर्लोभी रहकर चर्चिल जैसे बीसियों वायसरायों को बौने करने का सामर्थ्य रखने वाले महात्मा गाँधी सम्पूर्ण विश्व में भारत के सैंकड़ो परिचय में से एक परिचय हैं। राजनैतिक या कहें कूटनीतिक दृष्टि से भी बापू उस अँग्रेज़ी सल्तनत को उखाड़ फेंकने के स्वर का प्राण तत्व रहे, देश को एकजुट करके स्वाधीनता समर के लिए तैयार करने का सामर्थ्य उस ऊर्जावान बापू में सहज ही उपलब्ध था, जिनके कहने मात्र से राष्ट्रवासी तैयार खड़े रहते थे। अहमदाबाद का साबरमती आश्रम दिल्ली के हुकूमतरानों के नाको चने चबवाने में अव्वल था। गाँधी न केवल एक व्यक्ति थे बल्कि गाँधी एक ऐसी विचारधारा रही, जिसका अनुसरण कर राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सुचारु रूप से सुव्यवस्थित तरीके से और सुमङ्गल के साथ यापन कर सकता है। आज राष्ट्र ही नहीं अपितु वैश्विक परिदृश्य में गाँधी के अनुयायियों की संख्या लाखों-करोड़ों में है।

भारत की आज़ादी अपने पिच्चहतर वर्ष का सौष्ठव प्राप्त कर गई और लगभग उतना ही समय देश ने अब तक गाँधी विहीन बिताया है किन्तु बीते पिच्चहतर वर्षों में बिना गाँधी की नीति के यह देश पिच्चहतर कदम भी नहीं चल पाया। कल्पना में भी जब गाँधी के दृष्टिकोण पर बुद्धि जाती है तो यह आभास हो ही जाता है कि यहीं कहीं बापू इस समस्या का भी हल दे रहे हैं। देश की नीति निर्धारण में गाँधी के विचारों, कार्यशैली और दृष्टि की अत्याधिक मान्यता है। यदि भाषाई एकजुटता की बात करें तो बापू सम्पूर्ण भारत की एक राष्ट्रभाषा हो, इस बात के पक्षधर थे। उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की वक़ालत की थी। वे स्वयं सम्वाद में हिन्दी को प्राथमिकता देते थे। आज़ादी के बाद सरकारी काम शीघ्रता से हिन्दी में होने लगे, ऐसा वे चाहते थे। राजनीतिक दलों से अपेक्षा थी कि वे हिन्दी को लेकर ठोस एवं गम्भीर कदम उठायेंगे। लेकिन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से ऑक्सीज़न लेने वाले दल भी अँग्रेज़ी में दहाड़ते देखे गये हैं। हिन्दी को वोट माँगने और अँग्रेज़ी को राज करने की भाषा हम ही बनाए हुए हैं। कुछ लोगों की संकीर्ण मानसिकता है कि केन्द्र में राजनीतिक सक्रियता के लिए अँग्रेज़ी ज़रूरी है। ऐसा सोचते वक़्त यह भुला दिया जाता है कि श्री नरेन्द्र मोदी की शानदार एवं सुनामी जीत और विश्व में प्रतिष्ठा का माध्यम यही हिन्दी बनी है।

गाँधी तर्कवादी दृष्टि के साथ समाधानमूलक दृष्टिकोण के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने ही सबसे पहले क्षुद्रप्रथा का उन्मूलन करते हुए 'हरिजन' सम्बोधित करते हुए देश को समरसता का ध्येय दिया। आज जिस स्वच्छता का अनुसरण देश की सरकारें कर रही हैं, वह स्वच्छता का मन्त्र भी बापू की पोथी से निकला है। एक बार १९३५ में गाँधी जी जब इंदौर आए थे, तब बापू के भोजन की व्यवस्था सर हुकुमचंद सेठ के घर पर थी। नगर सेठ ने बापू को सोने-चाँदी के पात्र में भोजन परोसा, बापू ने चुटकी लेते हुए यह कहा कि 'मैं जिस बर्तन में भोजन करता हूँ, वह मेरे हो जाते हैं।' मज़ाक के बाद बापू ने अपने सहायक से अपने मिट्टी के बर्तन बुलवाए और उसमें

भोजन किया। इस बात से गाँधी जी की मितव्ययिता और सहज जीवन-शैली का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। एक और घटना इंदौर से ही गाँधी जी की जुड़ी हुई है, जिससे उनका हिन्दी प्रेम प्रदर्शित होता है। बापू १९३५ हिन्दी सम्मेलन की अध्यक्षता करने आने से मना कह चुके थे, अत्याधिक मनुहार के बाद बापू ने एक शर्त रखी, कि मैं तब ही आऊँगा जब मुझे एक लाख रुपए दान दिए जायेंगे, बापू ने कारण नहीं बताया, किन्तु बनारसीदास चतुर्वेदी ने बापू से हामी भर ली। आयोजन के दिन तक व्यवस्था कुल जमा साठ हज़ार रुपयों की हुई, बापू ने वह स्वीकार करते हुए उन पैसों से वर्धा हिन्दी विश्वविद्यालय और दक्षिण भारतीय हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना कर देश को दो अनुपम सौगात देकर अनुग्रहित किया।

आज हम भारत की आज़ादी की शताब्दी की ओर बढ़ रहे हैं, ऐसे दौर में कुछ कुपढ़ लोगों के द्वारा जिस तरह से गाँधी की महिमा की मूर्ति को खंडित करने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है, यह निहायती घटियापन है। ऐसे दौर में विद्यालय, महाविद्यालयों में गाँधी की जीवन शैली सम्बधित पाठ्यक्रम पुनः शुरू किए जाने चाहिए, सहायकवाचन जैसी पुस्तकों के माध्यम से इतिहास को ठीक ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए, गाँधी के दर्शन को जनमानस को समझाया जाना चाहिए। इन्हीं सब कार्यों से गाँधी के देश में गाँधी की पुनर्स्थापना होगी।

भारत भू पर ऐसा कोई वर्ग, विधा, कार्य, शासकीय-अशासकीय नीति नहीं है जो बिना गाँधी के दर्शन के पूर्ण होती हो। ऐसे कालखंड में गाँधी को उसी गाँधीवादी दृष्टिकोंण के साथ जनमानस के बीच स्थापित किया जाना चाहिए क्योंकि गाँधी एक हाड़-माँस का शरीर या मिट्टी-सीमेंट का पुतला नहीं है बल्कि गाँधी जीते-जागते राष्ट्र हैं। गाँधी तो जीवन शैली, विचार, आध्यात्म, नीति निर्धारक, नीति निर्माता, दर्शन और व्यवस्था है। इसी प्रकार गाँधी का अनुसरण युवा पीढ़ी के सजग भविष्य का नवनिर्माण है। इसी तरह गाँधी को आत्मसात करना आज की आवश्यकता है।

बाबूजी को कभी हारते नहीं देखा

देवेन्द्र श्रीवास्तव

कितनी मुश्किलें हों, कितनी परेशानियाँ हों
बाबूजी को कभी हारते नहीं देखा
कभी मन की पीड़ा, हृदय के दर्द को
किसी से कहते नहीं देखा
कभी-कभार बरामदे में या जाड़े में
अम्माँ से कुछ जरूर चर्चा किया करते थे
वट वृक्ष की तरह पूरे परिवार को
सदैव छाँव दिया करते थे
आगे बढ़ने की सलाह दिया करते थे...

हम भाई और इकलौती बहन को
सूरज की तरह रोशनी देते रहे
हमारे तम को हरते रहे
काबिल बनाने की जो भी
युक्तियाँ हो सकती थीं
जीवन भर करते रहे
कभी कर्ज में डूबते रहे
कभी कर्जदारों की धौंस भी सहते रहे
पर लायक बनने को सचेत करते रहे...

बाबूजी सपने देखते थे
उनके बच्चे बड़े ओहदे पर पहुँच कर
अपने पैरों पर खड़े हो जाएँ
किसी अच्छे पद पर नियुक्त हो जाएँ
सत्य पर चलने की उनकी निष्ठा
आसपास कई गाँवों में उनकी थी खूब प्रतिष्ठा
निर्णय लेने की उनमें गजब की थी क्षमता
परिवार, आसपास, गाँव और समाज के
दुखदर्द में पूरी शिद्दत से खड़े रहते थे
सच को कहने से कभी न डरते थे
आज बड़ा होकर उनके दिखलाए पथ पर
चलने की कोशिश करता हूँ
पर थोड़ी-सी मुश्किल होने पर
बहुत परेशान हो जाता हूँ
तब बाबूजी की मुश्किलों में जीने की कला
याद करने लगता हूँ
बाबूजी के कभी न हारने की
हिम्मत एवं हौसले को दिल से सलाम करता हूँ
आँखों में आँसू भर लिया करता हूँ...

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

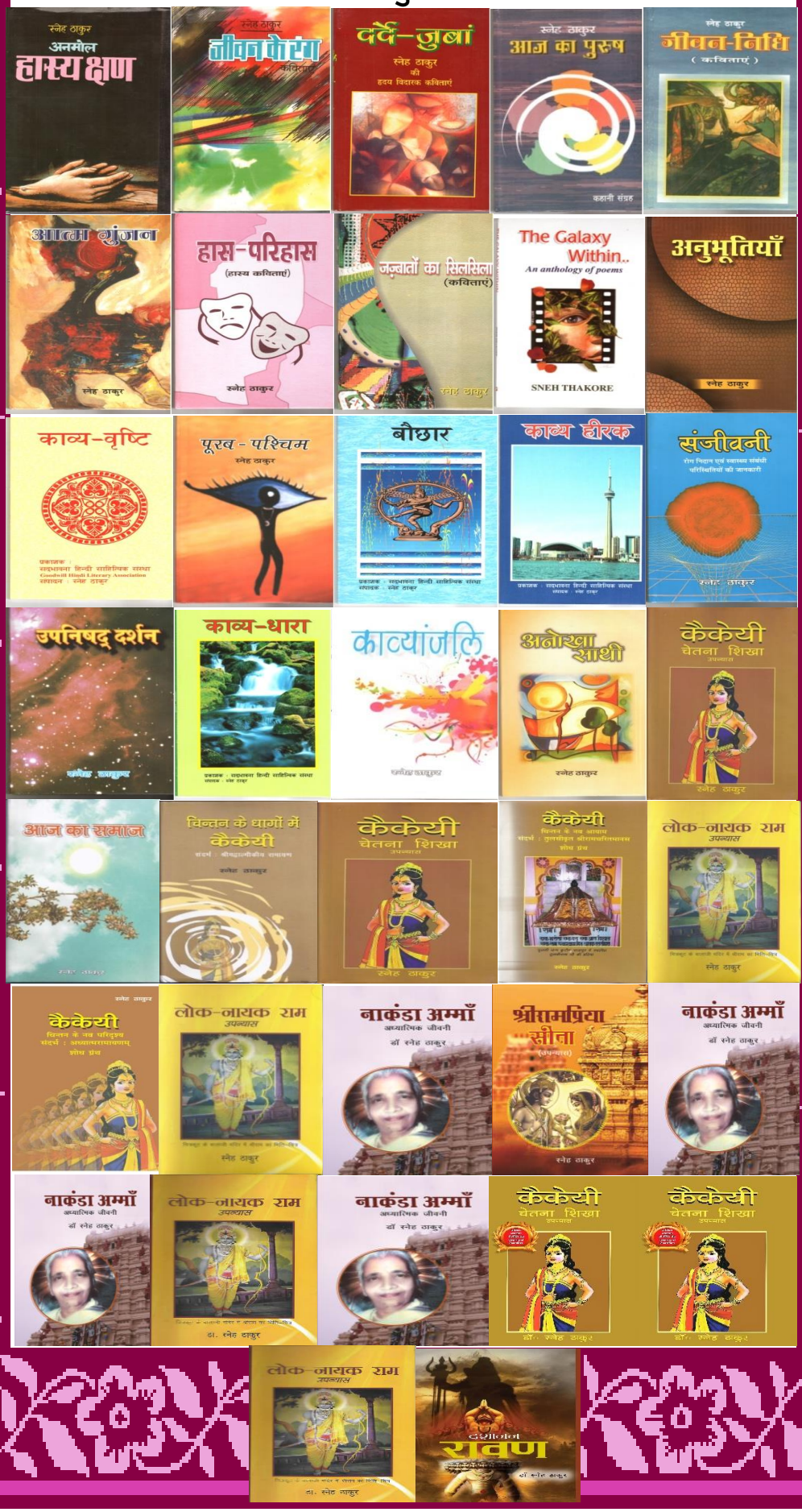

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण (उपन्यास)
लोक-नायक राम (उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र.
अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र.
अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ (अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम (उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ (अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ (अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता (उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ (अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम (उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम (उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र.
अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज (सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी (कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि (काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा (संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन (दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी (स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक (संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार (संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम (आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि (संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ (काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within (A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला (काव्य-संग्रह)
हास-परिहास (हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन (अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि (काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष (कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ (नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग (काव्य-संगह)
अनमोल हास्य क्षण (नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि., ४/५ बी., आसफ अली रोड, नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors, 55, Warren Street, LONDON – W1T 5NW, England
दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित